दीक्षा और गुरुतत्व



गुरुधाम—मन्दार

लेखक—

श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल

दीक्षा और गुरुतत्व

लेखक

श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल

सम्पादक

ज्वालाप्रसाद तिवारी

बांकेबिहारी लाल

प्रकाशक

गुरुधाम हिन्दी प्रकाशक विभाग

पोस्ट—बौंसी (मन्दार हिल)

जिला—भागलपुर

मूल्य ।॥)]  [प्रथम संस्करण

विषय-सूची

—o❀o—

कृतज्ञता प्रकाश

यह "दीक्षा और गुरुतत्त्व" नामक गम्भीर विषयक पुस्तिका विद्वत्वर श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल रचित बंगला पुस्तक का अविकल हिन्दी अनुवाद है। मूल बंगला पुस्तिका से भाषान्तर करने का मुख्य श्रेय पुर्णिया (बिहार) निवासी श्रीयुत पण्डित जगन्नाथप्रसाद तिवारी को है। उन्होंने इसका प्रकाशन व्यय भी बहुत अंशों में अपने ऊपर लिया है। एतदर्थ हम सब गुरु भाई उनके प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हैं। भाषा परिमार्जित करने तथा प्रूफ संशोधनादि कार्यों में श्री कमलाप्रसाद राय से हमें विशेष सहायता मिली है। इसलिए हम उनके प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करना कर्तव्य समझते हैं। विशेष सचेष्ट रहने पर भी, अनुवाद, भाषा संशोधन आदि में त्रुटियाँ अवश्य रह गयी होंगी, जिनके लिए सहृदय पाठकगण हमें क्षमा प्रदान करेंगे।

काशी, वैशाख शु० ३, सं० २००६

विनीत
ज्वालाप्रसाद तिवारी
बांकेबिहारी लाल

भूमिका

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरं।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवेनमः ॥

श्री श्री गुरुदेव के चरण-कमल की भक्तिपूर्वक वन्दना करके यह छोटा-सा ग्रन्थ रचित हुआ। श्री गुरु के प्रसन्न न होने से साधन मार्ग में अग्रसर होना असम्भव है। समित्पाणि होकर गुरु के पास जाने की प्रथा इस देश में वैदिक काल से चली आ रही है। यह गुरुवाद आर्य ऋषियों का एक सुप्रतिष्ठित श्रेष्ठ मत है। वे लोग जानते थे गुरु कृपा के बिना कुछ भी होने वाला नहीं है। इसी कारण आर्य शास्त्र में सर्वत्र ही इसकी प्रशंसा दिखाई पड़ती है। सामान्य शिक्षा के निमित्त ही जब कि गुरु सहायता की आवश्यकता पड़ती है तब सभी विद्याओं की अपेक्षा कठिन यह जो ब्रह्म विद्या है, उसे आयत्त करने के लिए गुरु बनाना सबसे अधिक आवश्यक होगा इसमें आश्चर्य ही क्या है। इससे आर्य ऋषियों की अनभिज्ञता या कुसंस्कार प्रकट नहीं होता। साधक मात्र ही इसका औचित्य स्वीकार करेंगे। नितान्त अहंकाराच्छन्न होने से ही इस गुरुवाद का काई विरोध कर सकता है। गुरु ही भवान्ध जीवों के उद्धारकर्ता हैं, उनके ही प्रसाद से भक्तिमान शिष्य इस सुदुस्तर भवसमुद्र को पार करने की आशा हृदय में पोषण करते हैं। आर्य ऋषियों का पदाङ्क अनुसरण करके मैं इस छोटी-सी पुस्तिका में इस तत्त्व को अपने ज्ञानानुसार बताने को प्रवृत्त हुआ हूँ। अपने प्रयास में सफल हुआ हूँ या नहीं, यह मैं नहीं जानता। वर्तमान युग में शिक्षित लोगों में भी गुरुवाद श्रद्धेय कहलाकर प्रचारित होने लगा है, किन्तु अयोग्य व्यक्तियों के हाथों में

यह गुरुतर भार न्यस्त हो जाने से कुछ आशंका का कारण उपस्थित हुआ है। मिथ्या कभी सत्य का स्थान अधिकार नहीं कर सकता, झूठ बोलने वालों की मिथ्या बातें प्रकट हो जाने से भक्तिमान के चित्त में सन्देह उपस्थित हो सकता है, इसीलिए मैं डर गया हूँ! शास्त्रानुशासन की अवहेलना करके स्वेच्छाचार अवलम्बन करने से ही इस अनर्थ का उपक्रम हुआ है। इसीलिए यथार्थ गुरुवाद और दीक्षातत्त्व को पूर्वाचार्य प्रदर्शित प्रणाली के अनुसार मैंने अपने ज्ञानानुसार अपने देशवासियों को समझाने की चेष्टा की है। कथोपकथन के रूप में समझाने से तत्त्व को समझने में सुविधा होती है। इसी कारण इस छोटी-सी पुस्तिका में भी मैंने यही पथ अवलम्बन किया है। सत्य के अनुरोध से स्थल विशेष पर सम्भवतः कुछ-कुछ अप्रिय बातें आ गयी हैं। सहृदय पाठकगण इसमें मेरा अपराध न मान कर मुझे क्षमा करेंगे। क्योंकि मैंने किसी के प्रति आक्रोश के कारण या द्वेष बुद्धि से यह पुस्तिका नहीं लिखी है। जिससे सत्य का प्रचार हो और मेरे देशवासी धर्मजिज्ञासु गण सत्य का स्वरूप समझने में समर्थ हों, और जो लोग यथार्थ तत्त्वान्वेषी हैं वे लोग इस पुस्तिका के पाठ से कुछ साहाय्य पा सकें, इस आशा से इसे लिखने का मुझे साहस हुआ है। यह विषय अत्यन्त गुरुतर और दुरूह है, और हिन्दू धर्म का यह एक मर्म स्थान है, इसलिए मैं अपने उद्देश्य के अनुरूप लिखने में पूरा समर्थ हुआ हूँ, इसमें मुझे सन्देह है। फिर भी इसे पढ़कर एक भी व्यक्ति के मन में यदि इस तत्त्व की आलोचना करने का उत्साह उत्पन्न हो, तो मेरा परिश्रम विफल न होगा।

चटक पहाड़, पुरीधाम
चैत्र १३१६ (वङ्गाब्द)

ग्रन्थकार

ॐ

दीक्षा और गुरुतत्व

—०:❀❀❀:०—

प्रथम अध्याय

धर्म-मीमांसा

मधु पण्डित का चण्डी-मण्डप

मधु पण्डित और दीनानाथ चटर्जी बैठे हुए हैं।

(श्यामाकान्त, रामब्रह्म चट्टोपाध्याय और अखिलबन्धु का प्रवेश)

मधु पण्डित—क्यों भाई! कहाँ गये थे? आओ, बैठो।

रामब्रह्म—अरे भाई, मेरे कर्मभोग की बात क्या पूछते हो? अब तो सन्ध्या हो चली है, आज जा रहा हूँ।

मधु—अरे आओ, बैठो। सन्ध्या कहाँ हुई है, अभी बहुत देर है। आओ, जरा तम्बाकू पी लो। धूप चमक रही है, ऐसे समय में तुम कहाँ गये थे, बताओ तो? तुम्हारा मन क्यों क्लान्त सा जान पड़ता है? क्या हो गया है?

रामब्रह्म—नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। मन ठीक ही है।

मधु—यही तो भैया, तुम स्वयं पकड़ में आ रहे हो। अवश्य ही कुछ हुआ है। और कुछ न होने पर भी, कम से कम भाभीजी से ही कुछ खटपट हो गयी होगी, यह तुम्हारा चेहरा देखने से ही अनुमान किया जा सकता है। बताओ तो बात क्या है? अब तो तुम इधर आते ही नहीं!

दीनानाथ—ये अब गूलर के फूल हो गये हैं। लोग अब इनकी चोटी भी नहीं देख पाते। इतनी धूप रहते ये जो निकल पड़े हैं,

इसमें कोई विशेष कारण अवश्य ही है। नहीं तो सूर्य्य देव का ऐसा सौभाग्य कहाँ कि वे इनका दर्शन कर सकें।

रामब्रह्म—कह डालो भाई, जो कुछ तुम लोगों के मन में है। मुँह बन्द कर देने का तो कोई कानून नहीं है।

दीनानाथ—बता ही दो न ऐसे समय में तुमने कहाँ पदार्पण किया था ? लोग राजा के ही दर्शन नहीं पाते। तुम ठहरे राजगुरु—तुम्हारा दर्शनलाभ अत्यधिक दुर्लभ है !

रामब्रह्म—अरे भाई, मेरे कर्मभोग की बात क्या पूछते हो, उस मुहल्ले में गाँगूली लोगों के गुरु महाराज आये हैं, उन्हीं को देखने गया था।

मधु—हाँ-हाँ, उनका नाम अवश्य ही मैंने भी सुना है, वे अच्छी तरह लिखना-पढ़ना जानते हैं, सुन चुका हूँ कि विद्वान पुरुष हैं।

दीनानाथ—उनको कैसा देख आये हो बताओ तो ? मैंने भी एक बार जाने का विचार किया था। उनका तो इस गाँव में खूब नाम-यश हो चला है।

रामब्रह्म—नाम क्यों न होगा ? चेष्टा करने से क्या मधु पण्डित का भी नाम न होगा ?

दीनानाथ—जो कुछ भी कहो भाई, इस बार तुम लोगों की जीविका चली जायगी।

रामब्रह्म—इससे मेरा क्या होगा ?

दीनानाथ—तुम्हारा कुछ ब्राह्मभावापन्न सा मन है यह मैं जानता हूँ, तुम मन्त्र-तन्त्र, लेने-देने के फेर में नहीं रहते यह ठीक है, किन्तु तुम्हारे दादा-काका इत्यादि की तो प्रधानतः यही उपजीविका है। अब यदि सभी लोग राह के संन्यासी को पकड़ कर गुरु बनाने लगे, तो पुराने गुरु महाराज लोगों की तो पूरी समाप्ति ही हो जायगी !

रामब्रह्म—उस आफत के चले जाने से ही भलाई है। झूठ-मूठ केवल लोगों को ठगना है।

मधु—जाने दो, साधु को कैसा देखा बताओ तो। अच्छे मनुष्य हैं, ऐसी उनकी प्रशंसा है।

रामब्रह्म—अच्छे मनुष्य तो क्या मेरे सिर हैं! केवल गरदन तोड़ने के यमराज हैं! कुछ पाखण्डियों ने मिलकर उनको सिद्ध पुरुष कहकर प्रसिद्ध कर दिया है, और जितने मूर्ख हैं सभी आकर उनके पैरों पर लोट रहे हैं। यह जो अखिल को आप देख रहे हैं, ये उसी दल के मनुष्य हैं। ये सभी लोग प्रचार करते हुए घूम रहे हैं कि साधु का हाथ शरीर पर पड़ते ही रोगी का रोग नष्ट हो जाता है, दरिद्र धनवान हो जाता है, मूर्ख पण्डित हो जाता है और अन्धे, कोढ़ी, लूले, लंगड़े सभी उनकी कृपा-दृष्टि से आरोग्य हो जाते हैं। खूब पैसा कमाने की युक्ति निकाली है। एक-एक करके लोग पैसा डाल रहे हैं। खूब आनन्द से दिन बीत रहे हैं! मेरी स्त्री भी यह सुनकर उनसे दीक्षा लेने के लिए पागल हो उठी है। स्त्री जाति की बुद्धि तो है, जो सुन लेती हैं उसी पर विश्वास कर लेती हैं और उसी को पाने के लिए नाच उठती हैं।

मधु—सम्भवतः इसीलिए तुम अपनी स्त्री के अनुरोध से उनको देखने गये थे?

रामब्रह्म—केवल स्त्री के अनुरोध से ही क्यों, अपनी गरज से भी कुछ। मेरी स्त्री तो दीक्षा लेने के लिए पागल हो गयी है, वह उनसे मन्त्र अवश्य लेगी। मेरे सालों में से कइयों ने उनसे दीक्षा ली है, तो भी अज्ञात कुलशील मनुष्य को हठात् गुरु बनाकर पीछे विपन्न होना पड़े, इस भय से उनका रंग-ढंग समझने के लिए गया था।

मधु—रंग-ढंग तुमने क्या देखा बताओ तो? तुम भी उनसे मन्त्र लोगे क्या?

रामब्रह्म—राम कहो! मैं क्या उस ढोंगी से मन्त्र लूँगा! मन्त्र-तन्त्र पर तो मेरा विश्वास है ही नहीं, इसके अतिरिक्त उन

भुईंफोड़ गुरुओं पर मुझे कुछ भी श्रद्धा नहीं है। किन्तु महाशय, क्या कहूँ गांगुली जी के बैठकखाने में लोगों को जगह नहीं मिलती। दिन नहीं, रात नहीं, उनसे मन्त्र लेने के लिए दल के दल लोग आ रहे हैं। उस भीड़ के बीच से गुरु महाराज को पा लेना ही कठिन है। बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, युवक-युवती, सभी उनके पास जाकर मन्त्र ले रहे हैं। वह धूर्त कैसा जादू दिखा रहा है, भगवान ही जानें।

मधु पण्डित—यह क्या कहते हो, बात क्या है बताओ तो। मन्त्र लेने का यह समय कहाँ है? आज कल तो दुष्काल है!

दीनानाथ—महाशय जी, आप समझ नहीं रहे हैं पण्डित और ज्ञानी तो मन्त्र ले नहीं रहे हैं? सभी अनाड़ी लोग ही तो मन्त्र ले रहे हैं, उन लोगों के लिए फिर काल अकाल कैसा!

मधु पण्डित—वाह! कालाकाल तो मानना ही पड़ेगा। दीक्षा-ग्रहण, यह एक संस्कार है, जैसी तैसी बात नहीं है। एक दिन में इतने लोगों का मन्त्र लेना भी कैसे हो सकता है? होम इत्यादि तो करने ही पड़ेंगे?

दीनानाथ—पागल हो गये हो क्या? होम कौन करता है? सब ढोंग हो रहा है।

मधु पण्डित—सभी लोग उनसे मन्त्र लेंगे कैसे? जिन लोगों के गुरुवंश की धारा लुप्त हो गयी है, वे लोग तो ले भी सकते हैं, किन्तु कुल-गुरु के रहते जिस किसी से मन्त्र लेना शास्त्र विरुद्ध है।

दीनानाथ—रहने दो अपना शास्त्र। अब क्या वह दिन है कि तुम लोग जो कहोगे वही होगा? अब सभी लोग लिख-पढ़ कर समझदार हो गये हैं। तुम्हारा विधान अब न चलेगा।

मधु पण्डित—यही तो बात है। उनसे किस तरह सभी लोग मन्त्र ले सकते हैं?

रामब्रह्म—मन्त्र ले सकते हैं? देश भर के लोग ले रहे हैं, मैं देख आया हूँ। स्त्री-पुरुष सभी उसके शिष्य बनने के लिए

व्याकुल हैं। नहीं मालूम वह धूर्त कैसा जादू जानता है। फिर बड़े चाचाजी के दो लड़के उनसे मन्त्र ले आये हैं।

दीनानाथ—यह क्या कह रहे हो जी ? एं ! सार्वभौम जी के लड़के होकर क्या अनाड़ी गँवार से मन्त्र ले आये हैं ! हरे कृष्ण कहो ! यह सब क्या हो रहा है ?

रामब्रह्म—बड़े चाचाजी तो सुनते ही खड़ाऊँ से पीटने के लिए उसके पीछे दौड़ पड़े थे। वह तो भागता-भागता घूम रहा है। समझ गये दीना भैया, इन परमहंस लोगों के पास हंसत्व कुछ भी नहीं है। ये सभी परम बगुला भगत हैं। ठीक कहा तुमने, अब हम लोगों के वंश से गुरुगिरी की धाक उठ चली। अच्छा ही हुआ, उस भण्डपन से यह अच्छा है। गुरु-पुरोहित से होता ही क्या है। साधु इत्यादि कुछ भी नहीं हैं। एक कौड़ी का भी उपकार नहीं है, फिर भी लोगों का अर्थ नष्ट हो रहा है, कष्ट बढ़ रहा है !

मधु पण्डित—देखो, यह सब तुम लोगों का भयंकर दोष है। हँसुए के ब्याह में खुरपे का गीत ! वह आदमी तुम्हें अच्छा नहीं जान पड़ा, तो नहीं ही सही। इसी कारण संसार भर के साधु-ब्राह्मण गुरुओं पर अपना क्रोध क्यों झाड़ रहे हो ? मैं भी तो ब्राह्मण पण्डित हूँ, गुरु-पुरोहित का व्यवसाय करता हूँ। सभी को क्या तुम चोर कहना चाहते हो ? गुरु-टुरु का कोई प्रयोजन नहीं है, इसका क्या मतलब है ?

रामब्रह्म—हरे कृष्ण ! तुम्हारी तरह ब्राह्मण पण्डित को क्या मैं कुछ कहता हूँ ? वे पाखण्डी लोग तुम्हारी कानी अंगुली के भी समान नहीं हैं और सभी के गुरु बन कर बैठे हुए हैं, यह देखने से ही तो मन खराब हो जाता है। अपनी बात तुम छोड़ दो, तुम गृहस्थ हो या जो भी हो, बहुत से प्रसिद्ध साधुओं से कहीं अच्छे हो। मैं उन ठग धूर्तों से तुम्हारा स्थान बहुत ऊँचा मानता हूँ। तुम्हारी

तरह गुरु पाने से तो लोगों का सौभाग्य ही होगा। उनको यह सौभाग्य रहेगा तभी तो तुमसे वे शिक्षा पावेंगे।

मधु पण्डित—अच्छा भैया अच्छा। एक तरफ से मेरी प्रशंसा करते चलो, बिलकुल ही सातवें स्वर्ग की चोटी पर पहुँचाकर ही ठहर जाना। फिर एक धक्का लगाकर नरक में ढकेल देना। सच्चे ब्राह्मणों, पण्डितों, गुरुओं या साधुओं का दोष नहीं है, वे लोग बिलकुल ही निर्दोष हैं, यह मैं नहीं कहता, किन्तु तुम लोगों का दोष उनसे बहुत अधिक है।

रामब्रह्म—वाह! हम लोग क्या करें, हम लोगों का दोष तुमने किस बात में देखा?

मधु पण्डित—तुम लोगों का अर्थ केवल तुम नहीं होता, यह तो मैं तुम लोगों की तरह बाबू भैया, अंग्रेजी चाल-ढाल वाले, सभी लोगों को कह रहा हूँ।

रामब्रह्म—देखो, तुम जो भी कहो, ब्राह्मण पण्डितों ने ही हमारे देश को मिट्टी में मिला दिया। अच्छे कामों में कोई उत्साह न देंगे, शास्त्र की बातें किसी को समझाने की चेष्टा न करेंगे, केवल कोने में बैठे-बैठे नस्य खींचते रहेंगे, लोगों को गालियाँ देते रहेंगे और कैसे लोगों की जाति नष्ट करें इसी की चेष्टा में रहेंगे! अपने लड़के के किसी बड़े अपराध में तुच्छ दण्ड की व्यवस्था और दूसरा फतिंगा मार दे तो ५२) रुपये खर्च वाले प्रायश्चित्त की तालिका तैयार कर देते हैं। इन सब बातों को लोग चिरकाल सहते रहेंगे, क्यों? देश की छोटी जाति के लोग घबड़ा उठे हैं। वे लोग अब ब्राह्मणों को न मानेंगे। मानेंगे भी क्यों? केवल उन लोगों को दबा रखने से वे सुनेंगे क्यों? आज-कल अंग्रेजों का राज्य है, कुछ-कुछ लिखना-पढ़ना सभी सीख रहे हैं, सभी की आँखें खुल गयी हैं। अब क्या संस्कृत श्लोकों की आवृत्ति कर देने से लोग मानेंगे?

मधु पण्डित—सुनो, सुनो, व्यर्थ मत चिल्लाओ। देखता हूँ मुँह से जो ही निकल रहा है वही बोलते जा रहे हो। केवल भाषण करने से ही तो काम न चलेगा। समझ कर बोलना चाहिये। ब्राह्मण पण्डितों का दोष नहीं है यह तो मैं नहीं कहता, किन्तु यह दोष उनमें नहीं था, तुम्हीं लोगों ने पैदा किया है। पहले ब्राह्मण पण्डित लोग पैसे की परवा नहीं करते थे। पैसे की आवश्यकता भी अधिक उनको नहीं थी। अन्न की व्यवस्था थी, साधारण पहनावे के कपड़े भी मिल जाते थे। अब तुम लोगों ने ही अंग्रेजी पढ़कर आवश्यकता बढ़ा दी है। पहले बड़े आदमी राजे-महाराजे जिस तरह रहते थे, अब साधारण आदमी उसी तरह रहना चाहते हैं। सभी को अच्छे कपड़े चाहिये, छाते चाहिये, कुरते चाहिये, सुगन्ध वाली वस्तुएँ चाहिये, तेल चाहिये, जूते चाहिये, घड़ी-चेन चाहिये, गाड़ी-जोड़ी चाहिये! इनके अतिरिक्त स्त्रियों के वसन-भूषण भी आवश्यक हैं! अवश्य ही ईश्वर की कृपा से तुम लोग दस रुपये कमा रहे हो, किन्तु तुम लोगों में से कितने जलाशय प्रतिष्ठा, मन्दिर प्रतिष्ठा, देव-सेवा, साधु-सज्जनों की सेवा या ब्राह्मण पण्डितों की सहायता करते हो? पहले रुपया रहने पर लोग ये सब काम करके रुपये का सदुपयोग करते थे। तुम लोग जो पाते हो अपने ही लिए उसे खर्च कर डालते हो, अपने निकटस्थ पड़ोसी की तरफ एक बार भी घूमकर नहीं ताकते। पूजा-त्यौहार तो उठते जा रहे हैं, अब जो कुछ है वह स्त्री-पुत्रों की पूजा में ही खर्च होता जा रहा है। माँ-बाप का श्राद्ध तक भी न करोगे, करने पर भी दुनियाँ भर की जितनी सस्ती चीजें हैं, उन्हीं से काम करोगे। उससे ब्राह्मण पण्डितों का काम कैसे चलेगा, इसपर कभी विचार तुमने किया है? इसके अतिरिक्त एक और भी भयानक अपकार तुम लोग समाज का कर रहे हो। राजे महाराजे लोगों की जो चाल थी वह उन लोगों के राजमहलों में ही आबद्ध थी, साधारण लोगों का ध्यान उस तरफ

प्रायः आकर्षित नहीं होता था। किन्तु अपने पड़ोसी की चाल राजे-महाराजाओं की तरह हो जाने से, वह कब तक लड़के लड़कियों की दृष्टि से छिपी रहेगी, बताओ? इसीलिए दरिद्र की कुटिया से लेकर धनवान की अट्टालिका तक अभाव की आग धायँ-धायँ जल रही है। इस ज्वाला को रोकेगा कौन? इसीलिए सब लोग—धनवान दरिद्र सभी फतिंगे की तरह उस अग्नि में आकर कूद रहे हैं! इधर देश में घी, दूध, जल विशुद्ध मिलने का उपाय ही नहीं है। देश के पोखरे तालाब भठ गये, उस तरफ दृष्टि मात्र नहीं है, फिर भी सभी देश हितैषी हैं, सभी जनता के नेता हैं। तुम लोग सभी आज कल एक ही राग पकड़े हुए हो, कि हम ब्राह्मण पण्डित लोग ही सभी अनर्थों की जड़ हैं। दूसरी सभी जातियों को घृणा की दृष्टि से देखना हम लोगों की ही कुमन्त्रणा है। बलपूर्वक अनेक लोगों को हम लोगों ने ही अछूत बना रखा है! यह सचमुच ही हम लोगों का दोष है या तुम लोगों का दोष है, इस पर विचार करके देखो। चिर दिन से ही तो ब्राह्मण लोग सभी जातियों के गुरु हैं। वे लोग द्विजातियों के अतिरिक्त अन्य जातियों को वेद नहीं पढ़ाते थे, यह ठीक है, किन्तु सभी को पुराण, महाभारत, भागवत से तरह-तरह की आख्यायिकाएँ, तरह-तरह के भावों से लोक-शिक्षा के लिए व्याख्या करके सुनाते थे, यह क्या तुम नहीं जानते? देश में कथा सुनाने की प्रथा किसने चलायी? क्यों चलायी? यह क्या जानते हो? केवल वेद ही पढ़ना तो उन्होंने निषेध किया है, किन्तु तीर्थयात्रा, देवार्चना, मन्त्र-ग्रहण का तो सबके ही लिए विधान किया है, किसी को भी तो छोड़ा नहीं है। क्यों अति नीच श्रेणी का मनुष्य भी हमारे देश में धर्मभीरु होता है, यह क्या जानते हो? जो समाज के निम्न स्तर पर खड़ा है, वह भी क्यों भगवत् प्रेम प्रार्थी होता है? देवालयों में मस्तक झुकाया करता है? ब्राह्मण के सामने, पिता के सामने शिशु की भांति हाथ जोड़ कर

खड़ा रहता है ? उन सर्वलोक हितकामी ब्राह्मणों ने सभी के मङ्गल की तरफ लक्ष्य रख कर व्यवस्था तैयार की थी, इसलिए अब भी हम लोग उस विशाल वृक्ष की सुशीतल छाया उपभोग कर रहे हैं। हमारे दुर्भाग्य के कारण वृक्ष फलवान भले ही न हों, किन्तु छाया-दान करने से अब भी वह विरत नहीं है। हम लोगों ने बाल्य-काल में देखा है, अति नीच जाति के प्रति भी हमारे सद्व्यवहार में त्रुटि नहीं थी। बाग्दी❀ भैया, हमीद चाचा, तेली काका, और ग्वाला चाचा की भांति मधुर सम्पर्क, सबके प्राणों के साथ एक अखण्ड प्रेम का योग प्रमाणित करता था। वरन् आजकल ही जो लोग अंग्रेजी पढ़ चुके हैं उन लोगों का मिजाज गरम है। वे ही लोग देश की निम्न श्रेणी के लोगों के साथ मिलना जुलना नहीं चाहते, मिल भी नहीं सकते। ठीक उसी प्रकार जैसे अंग्रेज लोग हम लोगों के साथ मिल नहीं सकते। किस स्थान पर वह योग टूट गया है, इसका अन्वेषण करने में आज-कल बहुत से लोग तत्पर हो गये हैं यह ठीक है, किन्तु उस योग को अब उसी प्रकार के सरल भाव से लगा देने में कोई भी समर्थ नहीं हो रहे हैं। तो यह दोष किसका है ? अंग्रेजी पढ़े बाबुओं का है या हम लोगों की तरह दरिद्र ब्राह्मण पण्डितों का है ?

रामब्रह्म—भैया, तुम्हारी बातें मानो नयी नयी सी ज्ञात हो रही हैं। हम लोगों ने सोचा था, तुम लोगों के सिर पर ही दोष मढ़ देंगे। अब तो उलटा ही समझ में आ रहा है। हमारे ही कन्धे पर दोष आ पड़ा है। जो कुछ भी हो, ब्राह्मण पण्डितों की बातें छोड़ो, इन साधु-संन्यासियों पर मुझे जरा भी विश्वास नहीं होता। ये लोग परम पाखण्डी हैं ! ठग हैं !

मधु—ठग क्यों ? तुम लोग तो अबोध बच्चे अब नहीं हो। धोखेबाजों पर विश्वास करते हो क्यों ?

❀ बंगाल की एक अछूत जाति।

रामब्रह्म—विश्वास कैसे न करूँ बताओ ? जादू दिखाकर वह मुग्ध कर देता है। अभी उस दिन एक ने अपनी जटा से जल निकाल दिया, उनके ही दल के एक दूसरे ने मुँह के भीतर से शालग्राम निकाल दिया, लोग देखकर अवाक् हो गये ! मन की बातें टपाटप बता देता है, विश्वास कैसे न करूँ बताओ। विश्वास करके दुष्ट ग्रहों की शान्ति के लिए एक अनुष्ठान करने का विचार हुआ तो उसने कहा, वस्तु-सामग्री चाहिये रुपये नहीं चाहिये। कुछ विश्वास हो गया। उसके बाद उस धूर्त ने कहा—सधवावस्था में जो स्त्री मर गयी हो, उसके हाथ का कोई सोने का गहना चाहिये। अनुष्ठान में त्रुटि न होने देने के लिए बड़ी भाभीजी का दस भरी वजन का सोने का अनन्त ला दिया। उसने पूजा-दूजा क्या की, बरतन के गले में गहना पहना कर सिंदूर लगा कर रख दिया, कहा कि इसी तरह तीन दिन रहेगा। पहली रात को तो मैं सोया ही नहीं, खूब सतर्क रहा। दूसरी रात को भी बीच-बीच में उठकर देखता रहा, कि भाग जाता है या नहीं, किन्तु भागते न देखकर मन में कुछ विश्वास हुआ। कपड़ा देने से लेता नहीं था, खाना देने से खाता नहीं था। कहता था, हम लोगों का निष्काम धर्म है। रंग-ढंग देखकर मन में ऐसा ही भाव आ गया था। मेरी स्त्री साधु का अविश्वास करने के कारण मेरी बहुत ही भर्त्सना करने लगी। तीसरी रात को फिर मैं नहीं जाग सका। उसी मौके पर वह धूर्त गहना लेकर चम्पत हो गया। सबेरे खोजने पर कहीं भी उसका पता नहीं लगा। पुलिस में खबर दी गयी। अब तीन महीने बीत रहे हैं, पुलिस भी उसका कोई पता नहीं लगा सकी है।

मधु—तुम लोग भी यदि जादू से भूल जाते हो तो दूसरों को क्या कहूँ ? ब्राह्मण के लड़के होकर भी तुम लोगों को शास्त्र-ज्ञान नहीं है, इसलिए अनुष्ठान किस प्रकार किया जाता है इसकी जानकारी नहीं है। यह देखो कितना अन्याय है। जानकारी रहने से तो वह

ठग नहीं सकता था। मनगढ़न्त अनुष्ठान में विश्वास क्यों करोगे ?

रामब्रह्म—मन की बातें तो बता देता था !

मधु—कैसा दुर्भाग्य है ! इसी से क्या वह साधु बन गया। मन की बातें बता सकना तो एक विद्या है। अभ्यास करने से तुम भी बता सकते हो। यही जैसे जन्म-पत्री देखने से बताया जाता है कि किस ग्रह का क्या फल है। उससे तुम्हारे भूत-भविष्य की बातें भी बतायी जा सकती हैं। इसी तरह हाथ की रेखाएँ देखकर भी बहुतेरे भूत और भविष्य की बातें बता सकते हैं। फिर मुख देखकर भी बहुत से लोग मन की बातें जान सकते हैं। यह सब ही साइन्स (Science) है।

रामब्रह्म—यह सब मुझे क्या मालूम ? मन की बातें उसने बता दीं, मैंने सोचा बहुत बड़ा साधु है, विश्वास कर लिया। उसके बाद ही यह विपद आ पड़ी।

मधु—सच्चे आनुष्ठानिक ब्राह्मण को ठगने का उपाय नहीं है ! वे जैसे "उदासीनो गतव्यथः" होते हैं, वैसे ही "शुचिर्दक्षः।" हम लोगों के साथ क्या उनकी तुलना हो सकती है ? आज कल वैसे मनुष्य बहुत ही बिरले हैं।

श्यामाकान्त—ये सब आप लोगों की जबर्दस्ती है। उन लोगों की तरह और कोई नहीं है, यह भी क्या सम्भव है ? विचार तो कीजिये, इतनी बड़ी पृथ्वी में केवल हम ही लोग प्रिय हुए और उनके सभी दूसरे लड़के बेकार हो गये। यह भी क्या कभी सम्भव हो सकता है ? हम लोग ही खूब अच्छे हैं यह हम लोगों का एक निरर्थक गर्व मात्र है। और, इसी से हम लोगों का सर्वनाश हुआ है।

मधु—भारतवर्ष क्यों सबसे अच्छा नहीं है, यह पहले बताओ ? एक स्थान को अच्छा बता देने से ही क्या भगवान् खराब हो जाते हैं ? इससे शायद साम्यबुद्धि में आघात पड़ता है—यही बात है

न ? समता का तुमने क्या अर्थ समझ लिया है ! तुम लोगों की बुद्धि की बलिहारी है ! पैर तो पैर ही है, वह चल कर कितना कष्ट उठाता है, किन्तु सिर को इतनी व्यथा नहीं उठानी पड़ती, तो भी किसी दिन सिर को नीचे रखकर पैर को ऊपर रखने की व्यवस्था नहीं हुई ! इसके लिए पैर ने भी कभी किसी से शिकायत की हो ऐसी कोई खबर नहीं मिली। शुभ्र तुषार किरीटी हिमाचल की सौन्दर्य शोभा मनुष्यों में अपार आनन्द का सञ्चार करती है, उसकी निर्मल जलवायु जगत् के बिगड़े हुए स्वास्थ्य को पुनर्जीवित करती है, दूषित रक्त को शुद्ध करती है, रोग के बीजाणुओं को ध्वंस करती है। फिर वही जलवायु बंगाल में सहस्रों-सहस्रों मनुष्यों की आयु घटा रही है। कितने ही गाँव, कितने ही मुहल्ले श्मशान बनते जा रहे हैं—यह व्यवस्था उन्होंने क्यों की। देश के सभी स्थान तो उनके ही बनाये हुए हैं। जलवायु का समान गुण रखने से ही तो अच्छा होता। किन्तु उन्होंने तो यहाँ वैसी उदारता दिखाकर सब देशों को समान नहीं बनाया है। इससे क्या उनको एक ही तरफ दृष्टि रखने वाला कहोगे ? या स्वभाव को ही इसका कारण कहोगे ? भाई, सभी समान नहीं हो सकते। वैचित्र्य ही उनकी महिमा है। और उस वैचित्र्य की रक्षा करने के लिए ही भारतवर्ष ज्ञानभूमि है, कर्मभूमि और भगवान की लीलाभूमि है। सभी देशों में धर्म और धर्मशास्त्र विद्यमान हैं। किन्तु बायबिल के साथ कुरान, श्रुति-स्मृति, पुराण, संहिताओं की तुलना क्या हो सकती है ? हाथ काम करने के लिए हैं, पैर चलने के लिए हैं, मस्तिष्क विचार करने के लिए है, उसी प्रकार भिन्न भिन्न देश भिन्न भिन्न कामों के लिए होने पर भी, ज्ञान के लिए, मुक्ति के लिए, भक्ति-साधना के लिए भारतवर्ष सभी देशों का शिरोमणि है। भारतवर्ष में कितने अवतार हुए, ईश्वर की कितनी लीलाएँ हुईं। दूसरे देशों में कितने अवतार हुए, उनकी कितनी लीलाएँ हुईं बताओ तो ? अवश्य ही प्रयोजन

न होने से ही नहीं हुई। दूसरी बात तो दूर रही पाश्चात्य धर्माचार्यों के मुकुटमणि ईसामसीह हैं, किन्तु श्री चैतन्य के समय में ही तो सैकड़ों ईसामसीहों का आविर्भाव हुआ था। दूसरे युगों की बातें छोड़ ही देता हूँ।

रामब्रह्म—अरे यह बात तो ठीक ही है, हम लोगों का देश तो बड़ा है ही। इस विषय में कहने की कोई बात नहीं है। फिर भी भाई, उन मन्त्र-तन्त्रों, शास्त्र-पुराण पर अब विश्वास नहीं होता। विश्वास होगा भी कैसे तुम ही बताओ। हम लोगों की ही तरह वे लोग सुख-दुःख समान भाव से अनुभव करते हैं, केवल पैसा पैसा करके घूमते हुए चक्कर काट रहे हैं। एकाएक आकर ऐसे ही मनुष्य पोथी से एक मन्त्र निकाल कर कानों में देकर गुरु बन जाते हैं, अब उनको पैसे दो। इन सब बातों को क्या आजकल के शिक्षित व्यक्ति सह सकते हैं, या शिखा हिलाने वालों के दो-चार संस्कृत श्लोक सुन लेने से किसी का मन पिघल सकता है?

मधु—शिखा हिलाने वालों की बातों से मन पिघलता नहीं है यह बात ठीक है, किन्तु धोखेबाजों की बातों से तो 'अनन्त' पिघल जाता है ऐसा देख रहा हूँ। ठीक हुआ तुम लोग जैसे हो, तुम लोगों के उपयुक्त गुरु भी वैसे ही जुट गये हैं।

दीनानाथ—आजकल के अंग्रेजी पढ़े-लिखे साधु बाबा लोग खूब चतुर होते हैं। वे समझते हैं कि इन लोगों के साथ विद्या या तत्व कथाओं में हरा देने का उपाय नहीं है, इन सब विषयों में शिक्षित व्यक्ति मात्र ही शुकदेवजी के प्रपौत्र हैं! इन लोगों को ठगने के लिए जादू चाहिये। शुक पक्षी की तरह विद्या तो कण्ठस्थ ही है, काम पड़ने पर टाँय-टाँय शब्द मात्र ही है, इसीलिए इन लोगों को जादू दिखा कर अनायास ही ठगा जा सकता है। जादू न देखने से किसी प्रकार भी ये लोग न भूलेंगे। अरे भाई, तुम शहर कोतवाल ही हो या राजमन्त्री ही क्यों न हो, तुम्हारा जो

कर्तृत्व है वह तो सांसारिक बातों के लिए है, अध्यात्म ज्ञान का तुम क्या हाल जानते हो ? इस कारण धर्म व्यवसायी लोग इन विद्वान-मूर्खों को ठग कर खूब पैसे कमाते हैं। इन साधुओं का एक बड़ा दल है, इनके विज्ञापन दिये हुए हैं। विजय का ढोल बजाने के लिए दस-बीस वैतनिक मनुष्य भी हैं। स्थान-स्थान में इन लोगों की एजेन्सियाँ खुली हुई हैं। साधारण लोग सोचते हैं अमुक घोष डिप्टी मजिस्ट्रेट उनके शिष्य हैं, अमुक चटर्जी एकजिक्युटिव इञ्जीनियर उनके शिष्य हैं, अमुक सदरआला उनके चेला हैं! अब तो बचाव नहीं रहा, सभी चल पड़े उनके शिष्य बनने के लिए! शास्त्र कभी देखा नहीं, समझा नहीं, गुरुजनों, वृद्धों से पूछा भी नहीं। भाई धर्म तो तुम लोगों के शौक की वस्तु है। जाओ करो, आपत्ति नहीं है। किन्तु देखना, अन्त की रक्षा होनी चाहिये, अन्त में कहीं गुरु के नाम फौजदारी मुकदमा न दायर करना पड़े!

अखिलचन्द्र—अब क्या वे सब दिन रह गये हैं, महाशय? ब्राह्मणों से कोई काम नहीं होता। गुरु-पुरोहितों के दिन चले गये हैं।

दीनानाथ—गुरु-पुरोहितों का भाग्य तो फूट ही गया है, किन्तु साधु बाबाजी लोगों के तो एकादश स्थान में वृहस्पति है, देखता हूँ। इधर शास्त्रों को मानते ही नहीं, किन्तु साधु-संन्यासियों से मन्त्र लेना चल रहा है। आजकल यह एक तरह का रोग बन गया है।

अखिलचन्द्र—हमारे बाबाजी महाराज कहते हैं, खाने-पीने में विचार, इतना छूतछात मानना, पूर्ण अज्ञानता है। सभी में एक आध्यात्मिक तत्व विद्यमान है, इस बातको गुरु-पुरोहितों में से कोई नहीं जानता। यही जो बीजमन्त्र 'हुं फट् स्वाहा' है, इसका अर्थ क्या किसी को मालूम है। इसमें वायु की क्रिया है। श्वास बन्द कर देने से इसका अर्थ समझ में आता है। सन्ध्या का मन्त्र जिसको ब्राह्मण पण्डित लोग जपते हैं, उसमें कुछ भी नहीं है। इन

सबको निरर्थक समझ कर छोड़ सकते हो। असल सार सत्य ब्रह्म दर्शन है, उसको हाथोहाथ देख लो।

श्यामाकान्त—हाथो हाथ क्यों जी, सुनता हूँ, नख के भीतर इष्ट देवता को दिखा देता है। शक्ति इसीको कहते हैं। वह जिसको जो बात बता देता है वही होती है। उसकी शक्ति तो एक बार देखिये। ईश्वर का परिचित मनुष्य है कि नहीं-टनाटन रुपये आकर गिर रहे हैं !

दीनानाथ—तुम लोग भी खूब हो। यह सब कुछ नहीं है, वह धूर्त पक्का धोखेबाज है।

श्यामाकान्त—आप यह क्या कहते हैं, महाशय ! देश के ऊँचे ऊँचे स्थान के लोग भी उसके पैरों पर लोट पोट हो रहे हैं। वास्तव में वह साधारण मनुष्य नहीं हैं, ऐसी अनुचित बात कहने से कैसे काम चलेगा ? चेहरे से, आँखों से तेज बिलकुल ही बाहर बिखर रहा है ! चेहरा चमक रहा है, सिर के बाल आजानुलम्बित हैं, अच्छे फैशन से सँवारे हुए हैं, दाढ़ी जमीन तक लटक रही है ! महाशय, क्या बताऊँ वह तो विद्या का जहाज हैं। हमारे गुरु महाराज कह रहे थे वह साक्षात् व्यासजी हैं, कलि के जीवों का कष्ट देख कर अवतीर्ण हुए हैं। यह बात एक दम झूठी नहीं है, राजे महाराजे भी प्रतिवाद नहीं कर सकते। सिर ऊपर उठा कर उनके मुँह की तरफ ताकने की सामर्थ्य किसी को है क्या ? सुनता हूँ कि हमारे देश के जो षड् दर्शन थे, उन्हें बात की बात में काट कर उन्होंने सप्तम दर्शन निकाल दिया है। हमारा राजेन रोग की ज्वाला से छटपटा रहा था, पर ज्यों ही धीरे-धीरे जाकर उसने उनके पैर पकड़ लिये, फिर रोग कहाँ रह गया। बाबाजी ने कहा—"जा बेटा, तुझे कोई भय नहीं है। ग्रह कष्ट रहे तो कट जायगा।" अब तो देख रहा हूँ वही मनुष्य "हरिनाम लेते हुए मेरे गौरचन्द्र नाच रहे हैं" कह कर नाचता हुआ घूम रहा है। और एक बात

समझो भैया। बाबाजी के शरीर से सुगन्ध निकल रही है—बेला, जूही मानो कोई हमारे सामने बिखेर कर चला गया हो। यह सब क्या जैसा तैसा काम है। यह सब षट् चक्र भेद करने का योग है। समझ गये कि नहीं, राजयोग टाजयोग नहीं है, जो योग सबसे बड़ा योग है उसी में वह बिलकुल पक्के हैं। कमर कस करके जब लम्बी साँस खींच लेते हैं, तब छत की धरनें तक माथे को चूम लेती हैं, चारो तरफ गमगम करने लगता है। इधर सांसारिक विषय-बुद्धि भी बहुत है। मुकदमे में किस तरह जीत होगी इसे अच्छी तरह समझा रहे हैं। उनके बगीचे में कितने आम हुए थे, उनको कहाँ कहाँ चालान देने से कितने अधिक रुपये की आमदनी होगी, वही आलोचना चल रही थी। इधर तो शिवदृष्टि बन कर बैठे हुए हैं, किन्तु रुपये का शब्द होने से ही चौंक उठते हैं। फिर जागू भैया कह रहे थे कि गुरुदेव की कोई इच्छा नहीं है, उनका मन इस जगत् में नहीं रहता। हम लोगों पर कृपा रहने के कारण कभी कभी वह झट से इस तरफ दौड़ आते हैं। तो तुम लोग जो उनको रुपया गिनते हुए देखते हो, बातें कहते हुए देखते हो, वह सब अनिच्छा की इच्छा है। मैंने पूछा—अनिच्छा की इच्छा क्या है भैया? उन्होंने तब शिवदृष्टि बन कर कहा—"है-है, उसके भीतर बहुत सी बातें हैं, गुरुदेव की कृपा होने से पीछे उनको जान जाओगे, वे बातें गुरुवक्त्र गम्य हैं।"

मधु पण्डित—क्या श्यामाकान्त, तुम यह सब अपनी आँखों से देख आये हो क्या?

श्यामाकान्त—जी हाँ, वह एक तरह से मेरी आँखें का ही देखा हुआ है। शरीर से जो गन्ध निकलती है, उसे तो मैंने स्वयं प्राप्त किया था। किन्तु जागू भैया के पाकेट में जो रूमाल था उसमें लगी हुई इत्र की वह गन्ध थी या नहीं यह मैं समझ न सका। किन्तु बकुल की गन्ध! फिर रह-रह कर माधवी की गन्ध ठीक उनके

ही शरीर से निकल रही थी। और सब बातें मैंने मझले भैया की साली के मुँह से सुनी हैं। वे झूठ बोलने वाली नहीं हैं। बिलकुल बाल विधवा हैं—आज अठारह वर्षों से अरवा चावल और कच्चा केला खा रही हैं। वे कहती हैं—गुरुदेव ने कलि के जीवों पर कृपा करके धर्म को इतना सहज बना दिया है कि, वेदव्यास के पिता को भी यह करने की शक्ति नहीं थी। सुना जाता है कि पूर्व जन्म में वे एक मुनि थे, जीवों का कष्ट देख कर अवतीर्ण हुए हैं और धर्म को तथा स्वर्ग जाने के मार्ग को खूब सहज बनाते जा रहे हैं। गुरुदेव कहते हैं—"जात पांत पूछे नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।"

मधु पण्डित—अरे मूर्ख चुप रह! उन सब बातों को कहना सहज है। जाति मारने और समाज से निकाल देने में तो अधिक कष्ट नहीं है, जाति-रक्षा करना और समाज में स्थित रखना ही शक्ति का काम है। यह सब बुद्धि तो अब तुम लोगों की है नहीं, सहज होने से ही काम हो गया। कठिन होने के ही कारण शास्त्र कहता है—"क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति।" किन्तु तुम्हारे कवि प्रवर लोग क्या इन बातों पर ध्यान देंगे? अच्छा ही हो रहा है, काल का जो धर्म है वही हो रहा है। अब सभी पूरे जानकार हैं—सभी गुरु हैं। सभी शिष्य बनाकर लोगों को भवसागर के पार ले जाने के लिए व्यस्त हैं। इधर अपने गले में पत्थर बाँध कर समुद्र में बह रहे हैं, बीच दरिया में डूबते उतराते हुए प्राण निकल जाने के चक्र में पड़ गये हैं इसकी खबर ही नहीं है और अपने सम्बन्ध में उद्योग शून्य हैं, पर मानो ये सभी लोग शंकराचार्य या नित्यानन्द प्रभु के अवतार हैं!

अखिल—यह आप क्या कहते हैं पण्डित जी, तो क्या ये साधु-टाधु कुछ भी नहीं हैं? ये लोग जिस तरह चलने को कहते हैं वह क्या शास्त्र-सम्मत नहीं है? हम लोग तो यह नहीं जानते, हम समझते हैं कि हम लोग शास्त्र-सम्मत ही काम कर रहे हैं।

मधु पण्डित—भाई, शास्त्र-सम्मत होने से भी क्या, और न होने होने से भी क्या ? कोई तो अब उस तरफ से जायगा नहीं। कहने से भी उन सब बातों को न सुनेगा। तो जिसको जो बात अच्छी लगे वही करे।

रामब्रह्म—नहीं भाई, उदासीन रहने से काम नहीं चलेगा। हम लोगों को तो एक रास्ता चाहिये। हम लोग क्या करें बता दो ?

मधु पण्डित—करोगे क्या भाई, तुम लोग कुछ न करोगे ! बिलकुल ही न करो तो वह ठीक है। नास्तिक होना भी अच्छा है। किन्तु आस्तिक की सजावट वाला चोंगा पहन कर और नास्तिक बुद्धि लेकर तुम लोग जो अभिनय करते हो, उससे श्रुति, स्मृति, धर्म, देवता और आचार्य सभी मानो लज्जा से सिर उठा नहीं सकते। तुम लोग पाखण्ड भरे कामों को छोड़ सकते हो। तुम लोग यदि पाखण्ड छोड़ दो तो उस अवस्था में उन पाखण्डी साधुओं की आमदनी भी कुछ कम हो जायगी। देश का धर्म बच जायगा। लोकस्थिति रह जायगी।

अखिल—आप क्या कह रहे हैं ? हमारे स्वामी जी प्रकाण्ड पण्डित हैं, बिलकुल ही 'स्कालरशिप' प्राप्त कर चुके हैं। जज, मैजिस्ट्रेट और मेम लोग भी उनके पैरों पर लोट-पोट हो रही हैं ! गुरुदेव की अपार महिमा है, केवलं सत्यं—गुरुपादपद्मं।

दीनानाथ—जा-जा, तू अब अधिक पाखण्ड मत कर भाई, तुम लोगों के गुरु का आदि अन्त सब ही मैं जानता हूँ।

रामब्रह्म—विलायत के भी लोग उनके लेक्चर सुनने के लिए लालायित हैं। विलायत जाने के लिए उनके पास कितने ही अनुरोध-पत्र आ रहे हैं। स्वामी जी ने उनका एक बण्डल बाँधकर रख दिया है और किसी अच्छी पोशाक पहने आदमी को देखते ही उसे उन चिट्ठियों को खोलकर दिखाते हैं। फिर यह भी कहते हैं कि आप लोग यह सब किसी को भी मत बताइयेगा। मैं आत्म-प्रशंसा सुनने

की इच्छा नहीं करता। आप लोग दो-चार जो अन्तरङ्ग हैं, उन्हीं को छिपे तौर से यह सब मैंने दिखा दिया। यह ठीक है कि बाबा जी में लेक्चर देने की शक्ति है। लोगों को मुग्ध भी कर सकते हैं।

मधु पण्डित—मैं तो किसी की शक्ति कम रहने की बात नहीं कहता। देश के और अपने दुर्भाग्य की बात ही सोच रहा हूँ। विलायत का सम्मान ही तब तुम लोगों के मत से सबसे बड़ा सम्मान हुआ ?

अखिल—ओः ! ऐसा नहीं। बात यह है कि ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी के दिग्गज विद्वान लोग भी उनके लेक्चर सुनकर मुग्ध हैं। एकएक करके साहब-मेम सभी उनके शिष्य बनते जा रहे हैं ! लेक्चर सुनकर अवाक् हो रहते हैं। साकार क्या है और निराकार क्या है, लोगस और कसमस (Logos & Cosmos) क्या हैं इन पर ऐसा कहते हैं कि सुनकर लोग मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं। फिर तो वे एक शब्द भी नहीं बोल सकते। हमारे पण्डित नीलकान्तजी—जो सबको परास्त कर घूमते रहते हैं, वे भी उनकी वक्तृता पर मुग्ध हैं। वे कह रहे थे कि यह मनुष्य मानो दत्तात्रेय हैं।

मधु पण्डित—यदि एक ही छलांग में भवसागर को पार कर सकूँ तो मुझे भी उनके पास ले जाकर उन्हीं से दीक्षा दिला दो।

रामब्रह्म—भाई, तुम क्या कह रहे हो, उन सब बातों पर ध्यान क्यों देते हो ? तुम तो हम लोगों के देश के शिरोमणि हो। ऐसा करने से क्या काम चलेगा ? गांव का योगी क्या भीख पाता है ! किन्तु तुम लोगों का भी दोष है—यह भी बता रहा हूँ ! नाराज मत होना। तुम लोगों में जिन्हें करने की सामर्थ्य है, वे भी तो कुछ चेष्टा नहीं करते। तुम लोगों की तरह प्रतिभा-सम्पन्न साधनशील विद्वान लोग भी यदि कोने में चुपचाप बैठे रहोगे, तो लोग धूर्तों के हाथ में पड़कर जादू देखकर क्यों न भुलावे में पड़ जायँगे ?

मधु पण्डित—समझाऊँ किसे, बताओ! "सच बोले तो लाठी मारे, झूठे जग पतियाय। गली-गली गोरस फिरे, बैठे सुरा बिकाय॥" जो लोग झूठ बोलना जानते हैं, उनकी ही बातों से तुम लोग भुलावे में पड़ोगे। और, हम लोग सच बात कहेंगे तो मारने दौड़ोगे। जान-सुनकर पाखण्डियों की तरह ढेर के ढेर झूठी बातें कहना क्या अच्छा है? पाखण्ड करना मेरे स्वभाव को सहा नहीं जाता। परलोक भी तो है। और विश्वतश्चक्षु भगवान् की बातें भी तो मैं भूल नहीं सकता। इस कारण—

रामब्रह्म—इस कारण फिर क्या? तुम निःसंकोच कह सकते हो। मैं तो इसी क्षण तुम्हारा शिष्यत्व स्वीकार करने को तैयार हूँ।

मधु पण्डित—नहीं भाई, मैं गुरु दुरु बन न सकूँगा। वह जिसका काम है उसको ही शोभा देता है। फिर भी इन सब भली बातों की जितनी ही आलोचना हो उतना ही अच्छा है! मैं मनगढ़न्त बातें न कह सकूँगा! शास्त्रानुकूल धर्मानुष्ठान ही मेरा अभिमत है। रातो रात ऋषि या अवतार बन जाने का मेरा आग्रह नहीं है। इसलिए स्वयं गुरु न बनकर व्यास वशिष्ठ को ही वन्दनीय गुरु स्वीकार करता हूँ। उन लोगों के मत को ही अभ्रान्त मत मान लेता हूँ। आज-कल के हंस-टंस लोगों पर मेरी विशेष श्रद्धा नहीं है।

रामब्रह्म—भाई यह तो तुम्हारी कट्टरता है। क्यों! तुम्हारे मुँह से ही तो पहले कितने ही उदार विचार मैं सुन चुका हूँ। अब फिर तुम बिगड़ गये क्यों?

मधु पण्डित—यही तो तुम लोगों का दोष है, इसी कारण मैं कुछ कहना नहीं चाहता। शास्त्रमत से चलने की बात कहने से ही तुम लोगों के मत से वह कट्टरता हो जाती है। शास्त्र मानने की बात आने से ही तुम लोगों को यम-यातना होने लगती है। पहले के असुर लोगों की ठीक यही दशा होती थी।

रामब्रह्म—अच्छा, हम लोग तो असुर ही हैं, तुम अब असुर दलन करो तो देखूँ।

मधु पण्डित—धर्मानुष्ठान करने की आवश्यकता होने से ही शास्त्र मानना पड़ेगा, क्योंकि शास्त्र ही धर्म का धारक और व्याख्याता है। हमारे मत से शास्त्र मनुष्य का वनाया हुआ नहीं है। जिन्होंने शास्त्रों की रचना की है, वे लोग ऋषि थे, वे लोग आप्त थे, वे सभी अभ्रान्त पुरुष थे। वे लोग इस युग के ऋषि, तपस्वी नहीं थे। उन्होंने विशुद्ध सत्त्व में अवस्थित होकर प्रज्ञा दृष्टि से जो सत्य का स्वरूप देख लिया था, वही जगत् के कल्याण के लिए लिपिबद्ध करके रख गये हैं।

अवश्य ही स्वार्थ-सिद्धि के लिए मनुष्यों ने उसमें दो-चार मनगढ़न्त श्लोक मिला दिये हैं, यह ठीक है, किन्तु सिद्ध साधकों की दृष्टि में उन कार्रवाइयों के पकड़े जाने में देर नहीं लगती। इसीलिए शास्त्र स्वयं पढ़ना न चाहिये, गुरु के मुँह से सुनना चाहिये। इसीलिए विद्वान् और साधक श्रेणी के लोग ही गुरु-रूप में मनोनीत होते थे। आज-कल की तरह वार्षिक दक्षिणा संग्रह करने वाले गुरु वे नहीं थे। धर्म अनुष्ठानगत है, पुस्तकगत या वाक्यगत नहीं है। इसीलिए जिन लोगों ने धर्म को धारण किया था और जो लोग अब भी धारण किये हुए हैं, उन अमोघ-वीर्य, तपोनिष्ठ, साधन-तत्पर, ज्ञान-विज्ञान पारदर्शी ऋषियों के बनाये हुए शास्त्रों और उनकी व्याख्याओं को शिरोधार्य करके चलना ही पड़ेगा। यही धर्म-साधन का प्रथम सोपान है। अत्यन्त उदारता दिखाने को तत्पर होकर धर्म को टुकड़े-टुकड़े करके अपने मन के अनुसार कंकाल मूर्ति बनाने की चेष्टा मत करो। बना तो सकोगे ही नहीं, वरन् जो है वह भी टूट-फूट जायगा। मनुजी कहते हैं—

"आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।
तस्मादस्मिन् सदायुक्तो नित्यं स्यादात्मवान द्विजः॥

श्रुति और स्मृति में बताया हुआ आचार परम धर्म है। अतएव आत्मवान् अर्थात् मनस्वी द्विजगण श्रुति-स्मृति विहित इस आचार के अनुष्ठान में सर्वदा यत्नवान् रहें। आचार विहीन का धर्म नहीं होता। मनु जी ने कहा है :—

"आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग्भवेत्॥

"आचारहीन ब्राह्मण वेदों के सम्पूर्ण फल भागी नहीं होते, किन्तु यदि वे सदाचारसम्पन्न हों तो उस अवस्था में वेदों के सम्पूर्ण फल भागी होते हैं।"

"येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।
तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन्नरिष्यते॥

पिता-पितामहादि जिस पथ को ग्रहण करके चलते रहे हैं, उसका अनुसरण करना ही कर्तव्य है और वही सत् पथ है; उस पथ से गमन करने वाले को अधर्म किसी प्रकार छू नहीं सकता।

रामब्रह्म—भैया, अब तो तुमने कठिनाई में डाल दिया। मनु-फनु को मानकर चलने से ही तो भारी विपद आ पड़ेगी। मनु की बातों में बहुत ही कट्टरता के निरर्थक विषय हैं। इन पर क्या आज-कल के युग में कोई ध्यान देगा ?

मधु पण्डित—मनु की बातों में तुमने क्या कट्टरता देखी है ?

रामब्रह्म—केवल ब्राह्मणों को ही सब दे डालो, और शूद्रों से पैर दबवाओ यही तो मनु का वचन है। ब्राह्मण अपराध करने पर भी हलकी सजा पावे, और वही अपराध कोई शूद्र करे तो उसके लिए भयंकर सजा विहित है। किसी अर्धसभ्य या असभ्य देश में भी ऐसे दण्ड का विधान नहीं है! उसके बाद एक और अत्याचार की बात सुनो। शूद्र तो वेद पढ़ने ही न पावेगा, यदि वह

सुन भी ले तो गरम सीसा उसके कानों में डाल देना पड़ेगा ! कैसा आराम है ! वे लोग क्या भगवान् के बनाये नहीं है। वे लोग क्या बाढ़ के जल में बह कर आ गये हैं ? मनुष्य का ऐसा अपमान सम्भवतः किसी देश में किसी ने किसी जाति के प्रति नहीं किया है। तो भी अपने पूर्वजों के गौरव से हमारे पैर जमीन पर नहीं पड़ते, संसार की सभी श्रेष्ठ जातियों को तो हमने म्लेच्छ बनाकर कोने में फेंक रखा है ! क्या तुम यह सोचते हो कि इसका फल न भोगना पड़ेगा ! जो सबके पिता हैं, वे कभी यह अपमान न सहेंगे। हम लोग जो परपदानत हो रहे हैं, मैलेरिया से भोग-भोग कर मर रहे हैं, यह सब ही इस पाप का फल है ! तुम्हारे मनु के पैरों पर मेरा दण्डवत् है। और यदि यही तुम्हारा "सतां मार्ग" हो, तो इस मार्ग से चलने की मुझे आवश्यकता नहीं है, इससे अच्छा तो यह है कि संसार-समुद्र में डुबकियाँ खाता रहूँ इसमें ही मैं राजी हूँ।

मधु—इतना बिगड़ते क्यों हो भैया ? हठात् उत्तेजित हो उठे क्यों ? मैंने क्या कहा और तुमने क्या समझ लिया ? अच्छा, तुम्हारी बातों की ही मीमांसा हो जाय। शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं दिया है, यही तो ? पहले मेरी बातों का उत्तर दो, बाद को मैं इस बात का उत्तर दे रहा हूँ ! ब्रिटिश गवर्नमेण्ट तुम लोगों को स्वायत्त शासन का अधिकार क्यों नहीं देती ? तुम लोग अयोग्य हो इसी कारण तो ?

रामब्रह्म—यह उन लोगों का एक बहाना है। जो हो, उन सब राजनैतिक बातों की हमें जरूरत नहीं है। मान लिया जाय कि, हम लोग अयोग्य हैं इसी कारण सरकार हमें स्वायत्त शासन नहीं देती, किन्तु योग्य हो जाने पर भी हमें न मिलेगा, यह बात तो वह कभी नहीं कहती। किन्तु हमारे देश के शूद्र लोग किसी जन्म में ब्राह्मणों का अधिकार पावेंगे यह बात शास्त्र नहीं कहता, ब्राह्मण पण्डित लोग भी नहीं कहते। शूद्र के घर में जन्म हुआ है, इसी लिए कोई अच्छा

आदमी--धार्मिक होने पर भी, उसे शूद्र ही रहना पड़ेगा, इसके विपरीत जो करने जायगा वह धर्म द्रोही माना जायगा। यही तो हम लोगों का शास्त्र है !

मधु पण्डित—योग्य होने पर अधिकार नहीं दिया जाता, यह बात तुमको किसने बतायी ? शास्त्रों ने मनुष्य को योग्यतानुसार अधिकार देना स्वीकार किया है ।

रामब्रह्म--किन्तु इस जन्म में नहीं दूसरे जन्म में अधिकार पाने की बात लिखी है ।

मधु पण्डित—यह तो है ही । इसके अतिरिक्त अत्युग्र तपस्या के प्रभाव से इस जन्म में भी वह अधिकार मिल सकता है । विश्वामित्र तो क्षत्रिय होकर भी उसी जन्म में ब्राह्मण बन गये थे ।

रामब्रह्म—आप लोगों का हिलाना घुमाना उसी एक विश्वामित्र को लेकर ही है । और तो कोई नहीं है ?

मधु—क्यों ? शास्त्रों में वैश्य ऋषियों, शूद्र ऋषियों के भी अनेक नाम हैं । योग्यता रहने से ही योग्य अधिकार मिल जायगा यही तो सनातन प्रथा है । योग्य होने पर भी उच्चतर अधिकार पाने के लिए निम्न वर्णों को कुछ संघर्ष का सामना करना पड़ता है, कुछ विघ्न सहने पड़ते हैं ।

रामब्रह्म—जो योग्यतर हैं, उनको संघर्षों का सामना क्यों करना पड़ेगा ?

मधु—संघर्ष इसीलिए होता है कि, कहीं योग्यता का भान करके कोई अयोग्य व्यक्ति अनधिकार प्रवेश लाभ न कर ले। कुछ आक्रमण प्रत्याक्रमणों द्वारा परीक्षा हो जाने में दोष ही क्या है ? तुम लोगों के विलायत की महासभा में भी तो नेतृत्व और सदस्य निर्वाचन के बारे में खूब ही वादानुवाद और हंगामे होते हैं । अन्त में अधिकांश लोगों के मत से जो योग्यतर होते हैं वे ही मनोनीत होते हैं । किन्तुजिस बात में जिसका खास अधिकार रहता है, वह

अधिकार दूसरे को देते समय मर्यादा और स्वार्थ बुद्धि पर कुछ आघात पहुँचता है।

रामब्रह्म—मान लेता हूँ कि ऐसा होता है। किन्तु अनेक अयोग्य ब्राह्मण भी ब्राह्मणों के दल में स्थान पा रहे हैं, और अनेक शूद्र ब्राह्मणोचित गुणों से भूषित हैं, तो भी समाज में जरा ऊँचा स्थान पाने की आशा उन्हें नहीं है, यह क्यों होता है?

मधु पण्डित—इसलिए कि समाज जीवित नहीं है। यदि यह जाति अर्धमृत अवस्था में न रहती, तो कदाचित ऐसी बात नहीं होती। इस युग में कौन किसकी परवा करता है, कौन किसका सम्मान करता है। मस्तक न रहने पर जो दुर्दशा अवश्यम्भावी है, हम लोगों की वही दुर्दशा हो गयी है।

रामब्रह्म—यदि ऐसी ही बात है समाज की इतनी अधिक दुर्दशा हो गयी हो तो उस मृत समाज को लेकर इतनी उछल कूद क्यों? इच्छा और सुविधा के अनुसार जिसकी जो रुचि हो वह वही क्यों न करे? मृत समाज-सर्प के भय से अनेक मंगल के कार्य तो रुके हुए हैं।

मधु पण्डित—जिसकी जो खुशी हो उसके अनुसार करने से यह पृथ्वी नरक में परिणत हो जायगी, मनुष्य के रहने के अयोग्य हो जायगी, इसे तुम क्यों भूल रहे हो? यह ठीक है कि पुरानी प्रथा के अनुसार वर्तमान युग में सब काम नहीं हो रहे हैं, किन्तु इसी कारण जो कुछ हो रहे हैं उन्हें भी उठा देने से क्या लाभ है? यद्यपि कर्मों के पूर्ण न होने से फलहानि हो रही है, तथापि इन सब जीर्ण परित्यक्त अनुष्ठानों के द्वारा अब भी हम लोग अपने पूर्वजों के साथ संयोग रक्षा कर रहे हैं। असम्पूर्ण रूप से या विकृत रूप से अनुष्ठित हो रहे हैं इस कारण यदि हम लोग उन्हें भी छोड़ दें, तो फिर उस प्राचीन ऋषिकुल के साथ हमारी क्षीण संयोग-रेखा भी विलुप्त हो जायगी। हम लोग उन्हीं लोगों की सन्तान हैं यह बात आधी

शताब्दी बीतते न बीतते सबके चित्त से मिट जायगी। इस तरह आत्मघाती बन जाने की प्रवृत्ति, भगवान् करें हमारे मन में न आवे। हमें अब भी भरोसा है कि हम लोगों में से जो लोग उन असम्पूर्ण अनुष्ठानों को भी परम श्रद्धा के साथ प्रेम के साथ पालन करते आ रहे हैं, उन लोगों की एकान्तिकी निष्ठा भक्ति ही फिर उस सुप्राचीन विलुप्त प्रायः साधनाओं में जीवनी-शक्ति का संचार करेगी। भक्त-वत्सल भगवान् उनके अन्तःकरण के सुकोमल सरल भक्ति प्रेम मंण्डित सूत्रों को पकड़ कर फिर इस भारतवर्ष का कल्याण-विधान करेंगे। फिर प्रकृत ब्राह्मण-धर्म का और सच्चरित्र साधु ब्राह्मण का अभ्युदय होगा। फिर धर्म के आलोक से भारतवर्ष उद्दीप्त हो उठेगा, फिर धीरे धीरे श्रद्धा भक्ति की सुनिर्मल मलय-वायु भारत की उत्तप्त भूमि में प्रवाहित होकर भारतवासियों के चित्त को सुशीतल कर देगी। इस सम्भावना को मैं कभी दुराशा नहीं मानता।

हमारे देश में पहले क्षत्रिय नरेशों ने ब्राह्मणों की सम्मति लेकर अनेक अनाचरणीय जातियों को आचरणीय बना दिया था। अनेक ब्राह्मणेतर जातियों ने जैसे तपः प्रभाव से ऋषित्व और ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया था, वैसे ही अनेक आचार भ्रष्ट ब्राह्मण सन्तानों को भी पतित बना दिया गया है। वह चिह्न समाज में अब भी दिखाई पड़ता है! किन्तु तपस्तेज सम्पन्न ब्राह्मण सन्तान के लिए ब्रह्मनिष्ठ बनने की जितनी सम्भावना है उतनी अन्य जातियों के लिए नहीं है, क्योंकि जन्मगत संस्कारों का प्रभाव तो कम नहीं है। लोहार का लड़का लोहार के काम में; वैद्य का लड़का चिकित्सा व्यवसाय में; बनिये का लड़का व्यवसाय क्षेत्र में और कायस्थ का लड़का हिसाब-किताब में जितना पारदर्शी होता दिखाई पड़ता है वैसा किसी दूसरे को विरले देखा जाता है। इस कारण किसी एक व्यवसाय में पुरुष परम्परागत चेष्टा से समधिक फल लाभ होता है इस विषय में सन्देह नहीं है। इसी कारण एक एक व्यवसाय एक एक

जाति का जातिगत व्यवसाय बन गया है। इस प्रकार की व्यवस्था जातीय धन सम्पत्ति वृद्धि और समाज के उन्नति-साधन के लिए अच्छी ही कही जानी चाहिये। किन्तु यदि कोई पुरुष एक विशेष जाति के अन्तर्गत जन्मग्रहण करके भी कर्म और चेष्टा के प्रभाव से समाज के सभी प्राचीर-बन्धनों को लांघकर अपने तेजः प्रभाव से और चरित्रबल से बलयुक्त होकर अपने समुन्नत शिर को और भी ऊपर उठाकर खड़ा हो जाय तो उसके लिए कौन स्थान न छोड़ देगा? आज भी यवन हरिदास का स्मरण करके किसका मस्तक नहीं झुक जाता। नीच कुलोद्भव रैदास और म्लेच्छ कबीर की पूजा भक्ति पुष्पों से कौन नहीं करता। ब्राह्मण पुत्र होते हुए भी जब वाल्मीकि पथिकों का सर्वस्व लूट लेते थे; तब कौन उनको ब्राह्मण होने के कारण पूजा करता था। और जब वही दस्यु रत्नाकर तस्कर वृत्ति छोड़कर तपः प्रभाव से पहले के कलंक को धोकर भारत के कविता रसाम्र कानन में प्रथम कोकिल रूप में प्रकट हुए; जब विरहवेदनाक्लिष्ट क्रौञ्चवधू की विलाप ध्वनि ने उनके कोमल मन में करुणा के अनन्त उत्स निकाल कर उनके अतीत जीवन की समस्त कालिमाओं को पोंछ डाला; तब कौन उनके दस्यु जीवन की हीन प्रवृत्ति की बातें याद करके उनकी इस पवित्र स्मृति का अनादर करने में समर्थ होता है? उन बातों को जाने दीजिये। वेद सुन लेने से शूद्रों के कानों में गरम सीसा ढाल देने की जो बात लिखी हुई है उसमें भी कोई कुअभिप्राय नहीं है। अयोग्य व्यक्ति अर्थ न समझ कर पीछे वेद की मर्यादा हानि करने लगेंगे, इसीलिए उनको वेद सुनने की मनाही की गयी है। उन सब बातों को कानों से सुनने का भी निषेध है। कानों से सुनने से ही मन में विचार उठेगा कि कर के देख लूँ। किन्तु वह योग्यता तो प्राप्त नहीं हुई है, अनर्थक उभय विभ्रष्ट होकर जन्म-जन्मान्तर को नष्ट कर डालेगा, अपना अहित करेगा, इस तरह समाज का भी घोरतर

अमंगल करेगा, इसीलिए इतने कठिन शासन की व्यवस्था है। एक राजा की कहानी कहता हूँ सुनो—

राजा गुरुजी से प्रतिदिन वेदान्त सुनते थे। ज्ञान-शास्त्रों का चरम ग्रंथ ही वेदान्त है। इस हेतु राजा गुरु से कोई अन्य शास्त्र न सुनकर वेदान्त ही सुना करते थे। वेदान्त सुनकर राजा के मन में यह धारणा उत्पन्न हुई कि "सभी समान हैं।" इस सिद्धान्त के अनुसार उन्होंने गृहस्थिता अपनी सुन्दरी विधवा कन्या को ग्रहण करने की अभिलाषा अपनी पत्नी को बतायी। पत्नी सिर पर कराघात करने लगी और राजा की जिद देखकर कोई दूसरा उपाय न पाकर उन्होंने गुरु को बुला कर समस्त विवरण सुनाया। गुरु ने देखा कि उन्होंने अयोग्य व्यक्ति को ज्ञान का उपदेश देकर अत्यन्त मूढ़ की तरह काम किया है। अज्ञानी या अर्धप्रबुद्ध व्यक्ति को यदि इस प्रकार लोक विध्वंसी साम्य ज्ञान की उपलब्धि हो जाय तो उस अवस्था में यह संसार नरक ही बन जायगा इसीलिए इतने विधि-निषेध हैं और कठोर शासन की व्यवस्था है। "उपदेशोहि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये" मूर्ख या अयोग्य व्यक्ति को उपदेश देने से उसकी चित्तवृत्तियाँ तो शान्त होतीं ही नहीं वरन् उसका औद्धत्य बढ़ जाता है। उपदेश प्राप्त करने के लिए योग्यता प्राप्त करनी पड़ती है नहीं तो केवल उपदेश से फल न होगा। योग्यता प्राप्ति के ही लिए साधना की आवश्यकता है। साधना की सोपान-परम्परा पर आरोहण करके उच्चतर शिखर पर पहुँच जाने पर उसके बाद ही उच्चतम ज्ञान में अधिकार पैदा होता है। तभी ब्रह्मजिज्ञासा अभीष्ट फलदायक होती है। नहीं तो मैंने जो कुछ सुना वह समझ न सका जो बात समझ गया उसको कर न सका; इस प्रकार निष्ठा और श्रद्धाविहीन होकर पशु की भांति उच्छृङ्खल जीवन यापन करने से इहकाल परकाल दोनों ही विनष्ट हो जाते हैं। नियमों की कठोरता और अनुष्ठानों की जटिलता के

भीतर से ही योग्यता प्राप्त करनी पड़ती है। योग्यता प्राप्त हो जाने पर गुरु वाक्यों में विश्वास होता है और उनके उपदेश वाक्यों को समझ लेना भी सहज हो जाता है।

रामब्रह्म—अच्छा भैया, स्त्रियों तथा शूद्रों का वेदों में या प्रणव मन्त्रों में अधिकार क्यों नहीं है ?

मधु पण्डित—वेद का अर्थ समझने में तुम लोग भूल करते हो। "न वेदं वेद-मित्याहुर्वेदो ब्रह्म सनातनं। ब्रह्मविद्यारतो यस्तु स विप्रो वेद पारगः।।" सनातन ब्रह्म ही वेद है, इस वेद को जो जानते हैं वे ही वेदवित् हैं, वे ही ब्राह्मण हैं। इस कारण इस वेद को जो लोग नहीं जानते वे लोग ब्राह्मण होंगे कैसे ? "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।" ब्रह्मविद् ब्रह्म ही हो जाते हैं। इसीलिए ब्राह्मण के पद-रज की इतनी महिमा है ?

स्वर्गीय कवि दाशरथि राय ने यथार्थ कहा है :—

"मम मानस सदा भज द्विजचरण पंकज;
द्विजराज करिले दया वामने धरे द्विजराज—
भव रोग असाध्य ब्याधि, वैद्य कि ताय जाने विधि,
ए रोगेर ओ महौषधि ब्राह्मणेर पदरजः।"

अर्थात्—"हे मेरे मन, तुम सदा ब्राह्मण का चरण-पंकज भजो; ब्राह्मण के दया करने से वामन (बौना) चन्द्रमा को पकड़ लेता है। यह भव रोग असाध्य व्याधि है, उसकी विधि का हाल वैद्य क्या जानेगा, इस रोग की भी महौषधि ब्राह्मण का पद रज है।"

भागवत में भी इसीलिए कहा है :—

"महीयसां पादरजोऽभिषेकं निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत्।।"

यह वेद पढ़ लेने से ही काम नहीं बनता। यदि शब्द मात्र ही वेद होता, तो इस वेद को सभी पढ़ें तो भय क्या है ? किन्तु इस वेद का अर्थ ब्रह्मज्ञ ब्राह्मणों के अतिरिक्त जानने का अधिकार किसी को नहीं है और, वेद का मूल जो प्रणव मन्त्र है वह मुख से उच्चारण

होने वाला नहीं है। साधारण व्यक्ति उसका उच्चारण जिस प्रकार करते हैं, उस तरह उच्चारण करना तो जरा भी कठिन नहीं है। किन्तु यह वैसा ही शब्द नहीं है—"आकाशस्य गुणः शब्दः"—और यह "निःशब्दं ब्रह्म उच्यते।" तो यह कैसा शब्द है ? यह

"अनाहतस्य यः शब्दस्तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः।
ध्वनेरन्तर्गतं ज्योतिर्ज्योतिरन्तर्गतं मनः।
तन्मनो विलयं याति तद्विष्णुः परमं पदम्॥
तैलधारमिवाच्छिन्नं दीर्घघंटानिनादवत्।
अवाच्यं प्रणवव्यंग्यं यस्तं वेद स वेदवित्॥"

यह शब्द जिस स्थान से उठ रहा है, उसके बीच शब्द को अनुसरण करके मन के प्रवेश कर जाने से परम पद की प्राप्ति होती है।

व्यर्थ चेष्टा करने से कोई फल नहीं मिलता। जहाँ फल प्राप्ति की सम्भावना हो वहाँ ही पुरुषार्थ प्रयोग करना चाहिये। जिस मस्तिष्क में ब्रह्मज्ञान प्रवेश न करेगा, वहाँ ज्ञान का उपदेश करना व्यर्थ का परिश्रम मात्र है। इसी कारण साधारणतः स्त्री शूद्र को ब्रह्मज्ञान का उपदेश करने का निषेध है। किन्तु जहाँ योग्यता है वहाँ तो देने में हानि नहीं है। ऋषि याज्ञवल्क्य ने तो मैत्रेयी को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया था। गार्गी, सुलभा प्रभृति ब्रह्मवादिनी कन्याओं के सम्बन्ध में किसकी जानकारी नहीं है ? सीता, सावित्री, कुन्ती, द्रौपदी, इन सभी ने ज्ञान और भक्ति प्राप्त की थी। पति सेवा के बीच स्त्री का जो धर्मानुशीलन होता है, वह ब्रह्मज्ञान के पहले संन्यासी के शम, दम, तितिक्षा, उपरति आदि की तरह आदर्श साधना का अनुष्ठान होता है। भगवान ने कहा है—"तस्मात् ज्ञानी नित्ययुक्त एक भक्तिर्विशिष्यते।" इस एकनिष्ठ पातिव्रत्य से ही साध्वी स्त्री पति के अन्दर जगत्पति की उपलब्धि करती हैं। जैसे निम्न अधिकारी को पहले प्रतिमा की उपासना करनी पड़ती है, वैसे स्त्री

को दूसरी तरह की पूजा की अपेक्षा एक मात्र पति में अटल प्रतिष्ठ होकर उनकी सेवा करने से देवोपासना का फल प्राप्त होता है। संन्यासी के लिए "यथा देवे तथा गुरौ" गुरु को ब्रह्मज्ञ समझ कर भक्ति करनी चाहिये। स्त्री को भी उसी प्रकार पति को साक्षात् ईश्वर मान कर पूजा करनी चाहिये। बाद को जिन्होंने शरीर बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर ली है, जिनका मन अनन्त शान्ति निलय के नित्य निवास में स्थिति प्राप्त कर चुका है, उस स्त्री का चित्त तो ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कर चुका है, वह तो जन्म मरण के उस पार है, अपने पराये, स्त्री-पुरुष, सुख-दुःख आदि भेद बुद्धि के दूसरे पार वह पहुँच चुकी है।

रामब्रह्म—देखो, एक और शंका है, भगवान के सामने तो सभी समान हैं, तो उन्होंने ब्राह्मण शूद्र भेद क्यों बना दिया ?

मधु पण्डित—क्यों बनाया इसे वे ही जानते हैं। ब्राह्मण शूद्र का ही भेद क्यों, स्त्री-पुरुष भेद, जीव-जड़ भेद, उच्च नीच, धनी दरिद्र सुरूप कुरूप, मूर्ख पण्डित अनन्त भेद जगत् में विद्यमान हैं। भेद में ही वैचित्र्य है और वैचित्र्य ही जगत् का विशेषत्व है। वैचित्र्य ही तो सृष्टि का मूल है। सृष्टि के पहले जब "एकोऽहं बहुस्याम्" यह भाव ब्रह्म में जाग गया, तभी प्रकृति चञ्चल हो उठी। जो गुणत्रय समता प्राप्त करके ब्रह्म में विलीन थे, वे थिरक उठे। सृष्टि के पहले जब :—

"आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥

ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत् तमोनुदः॥

योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ॥

सोऽभिध्याये शरीरात् स्वात् ।ससृत्तुविविधाः प्रजाः ।
अप एव ससर्ज्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥
तदण्डमभवद् हैमं सहस्त्रांशुसमप्रभम् ।
तस्मिन् यज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोक पितामहः ॥

यह परिदृश्यमान विश्व संसार किसी समय गाढ़ तमसाच्छन्न था। उस समय की अवस्था प्रत्यक्ष रूप से दिखलाई पड़ने वाली नहीं थी, किसी लक्षण द्वारा अनुमान करने योग्य नहीं थी, तब यह तर्क और ज्ञानातीत होकर सब प्रकार से मानो प्रगाढ़ निद्रा में निद्रित थी। बाद को स्वयम्भू अव्यक्त भगवान् महाभूतादि चतुर्विंशति तत्त्वों में प्रवृत्तवीर्य होकर, विश्व संसार को धीरे-धीरे प्रकट करके उस तमोभूत अवस्था के ध्वंसक होकर प्रकाशित हुए। जो केवल मन द्वारा ग्राह्य सूक्ष्मतम हैं, अव्यक्त सनातन हैं, वही सर्व भूतमय सुचिन्त्य पुरुष स्वयं ही पहले शरीराकार में प्रादुर्भूत हुए थे। उन्होंने अपने शरीर से विविध प्रजाओं की सृष्टि करके चिन्तामात्र से पहले पहल जल की सृष्टि की और उसमें अपना शक्ति बीज अर्पण किया। वह अर्पित बीज सुवर्णवर्णोपम सूर्य की भाँति विशिष्ट एक अण्ड में परिणत हो गया। इस अण्ड में उन्होंने स्वयं ही सर्वलोकपितामह ब्रह्मरूप में जन्म ग्रहण किया।

उनके बाद ब्रह्मा ने सत्त्वरजस्तमोगुणमय महत्तत्त्व अहंकार और मन की सृष्टि की। उसके बाद विषय ग्रहण करने में समर्थ इन्द्रियों की सृष्टि की। उसके बाद अनन्त कार्य करने में समर्थ अहंकार और पञ्च तन्मात्र इन छः के सूक्ष्म अवयवों को अपने विकार इन्द्रिय और पञ्च भूतों के साथ योजना करके उन्होंने देव, मनुष्य, तिर्यगादि सभी जीवों की सृष्टि की। साधारणतः सत्त्वगुण से देवता, रजो गुण से मनुष्य और तमो गुण से पशु-पक्षी, कीटपतङ्ग, वृक्ष प्रस्तरादि की उत्पत्ति हुई। प्रत्येक गुण में भी अन्य दोनों गुण मिले हुए हैं। मिश्रण के बिना सृष्टि नहीं होती। इसलिए देवता

लोग सत्त्व गुण से उत्पन्न होने पर भी उन लोगों में भी सत्त्व प्रधान, रजःप्रधान और तमःप्रधान देवता हैं। मनुष्य गण साधारणतः रजःप्रधान होने पर भी सत्त्व गुण की अधिकता के कारण ब्राह्मण, रजोगुण की अधिकता के कारण क्षत्रिय और रजस्तम के मिश्रण से वैश्य तथा तमःप्रधान शूद्र का आविर्भाव हुआ है। पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, वृक्षादि के अन्तर्गत भी इस प्रकार गुण-भेदानुसार तारतम्य दिखाई पड़ता है। "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्"—ब्राह्मणों का जन्म ब्रह्मा के मुख से हुआ। वे लोग अग्रजन्मा, सत्त्व प्रधान हैं, इसीलिए वे लोग अन्यान्य वर्णों के गुरु अर्थात् श्रेष्ठ हुए। दूसरे वर्ण नहीं हुए, ब्राह्मण ही क्यों गुरु हुए, यह बात तुम कह नहीं सकते। जबकि सृष्टि में सामञ्जस्य नहीं है, तब कोई सुन्दर, कोई असुन्दर, कोई श्रेष्ठ, कोई निकृष्ट, कोई ज्ञानी, कोई ज्ञानहीन, होंगे ही। अतएव जो लोग श्रेष्ठ और ज्ञानी हुए, वे ही लोग ब्राह्मण हुए। यह गुण-गत विभाग है, आपत्ति करने का कारण नहीं है। पहले इसी प्रकार हुआ था, उसके बाद ये सब गुण अपने अपने वंश में संक्रामित और परिस्फुट होते रहने से क्रमशः वे वंश-गत बन गये। इसमें कोई अनुचित बात नहीं हुई, वरन् उत्कर्ष प्राप्ति के लिए यही नियम समीचीन है। निश्चय ही इसमें दोष न आ जायंगे ऐसी बात नहीं है। कोई भी नियम तो अन्त तक निर्दोष रूप में रहते नहीं देखा जाता। एक एक वंश की एक एक विशेषता है। यदि एक व्यवसाय वंशानुगत रह सके तो उस विशेषता की धारा लुप्त नहीं हो सकती। मुझे जान पड़ता है कि लोक स्थिति के लिए यही उत्कृष्ट उपाय है। किन्तु यह निश्चित बात है कि ब्राह्मणों का जो सम्मान है वह ब्राह्मणत्व के ही लिए है। जहाँ ब्राह्मणोचित गुणों का अभाव दिखलाई पड़ता है, वहाँ उसको ब्राह्मण कहकर केवल पुकारा ही जाता है, वह ब्राह्मण का सम्मान नहीं पा सकता उससे शूद्र या भृत्य का काम करा लिया जाता है। आचार भ्रष्ट ब्राह्मण शूद्र के समान है।

उसकी मर्यादा का उल्लंघन करने से शायद दोष नहीं होता। शास्त्र में लिखा है—

"शान्तं दान्तं जितात्मानं जितक्रोधं जितेन्द्रियं।
तमेव ब्राह्मणं मन्ये, शेषा शूद्रा इति स्मृताः॥

किन्तु वंश की धारा वंशधरों में कुछ न कुछ रहती ही है — इसीलिए ब्राह्मण के पुत्र ब्राह्मण हैं। उनका सम्मान करना कर्तव्य है क्योंकि उनमें भावी ब्राह्मण विराज रहे हैं।

रामब्रह्म—यह बात खराब नहीं है, किन्तु ब्राह्मण तो अन्य वर्णों के गुरु हैं, गुरुगिरी का व्यवसाय भी वंशानुक्रमिक रूप से चल रहा है; इस कारण यदि योग्य व्यक्ति न मिले तो जिसको-तिसको गुरु बना देने से काम चलता है क्या ? इसके अतिरिक्त इस तरह का भय भी दिखाया जाता है कि गुरु-त्याग करने से निर्वंश होना पड़ता है।

मधुपण्डित—आज-कल जिस प्रकार अप्रतिहत गति से वंश-विस्तार हो रहा है, इससे वंश-लोप होने की आशंका नहीं है। उसके बाद गुरु बनाने का विषय आया। जिसको-तिसको तो गुरु बना देने से काम नहीं चलता। शास्त्र में तो यह बात लिखी नहीं है। उपयुक्त मनुष्य को ही गुरु बनाना चाहिये। अवश्य ही गुरु के वंश में यदि उपयुक्त मनुष्य रहें तो उनको ही गुरु के पद पर वरण करना चाहिये। किन्तु गुरु-वंश में यदि उपयुक्त मनुष्य न रहें तो उनको गुरु के पद पर वरण न करना चाहिये। शास्त्र में यह बात स्पष्ट रूप से उल्लिखित है।

रामब्रह्म—यह क्या कहते हो भैया, शास्त्र में ऐसी बात है क्या ? तब तो हमारा शास्त्र खूब उदार है।

मधुपण्डित—अवश्य ही है। तुमको शास्त्र से गुरु के लक्षण सुनाता हूँ :—

"शान्तं सुशीलं धर्म्मज्ञं शास्त्रज्ञश्चारुदर्शनं।
दयालुं पुत्रिणं दान्तं गृहस्थं गुरुमाश्रयेत्॥

ज्ञानपूर्णं शाठ्यशून्यं वयोज्येष्ठमवैरिणम् ।
अन्तर्वहिस्तुल्यचेष्टं सदा सस्मित भाषिणम् ।।
गृहेऽनासक्तवत् सन्तं गृहस्थं तं गुरुं भजेत् ।।

शान्त, सुशील, धर्मवित्, शास्त्रदर्शी, सुरूप, दयालु, पुत्रवान्, दान्त ऐसे गुणों से युक्त गृही को ही गुरु-रूप में ग्रहण करना चाहिये। जिनके हृदय और बाहर दोनों ही जगहों से समान व्यवहार होता है, जो निरन्तर प्रसन्न वदन से बातें करते हैं, जो साधु और अनासक्त भाव से गृहस्थाश्रम में वास करते हैं वे ही गुरु के योग्य हैं।

"शिष्य आत्मा गुरुर्म्मतः" शिष्य आत्मा सदृश है अर्थात् अपनी आत्मा को लोग जैसे प्यार करते हैं शिष्य को भी वैसे ही जो प्यार करते हैं वे ही गुरु होने के योग्य हैं।

गुरु के और भी लक्षण हैं, बता रहा हूँ। जो गुरु हों उनको—"शुद्धाचारः सुप्रतिष्ठः शुचिर्दक्षः सुबुद्धिमान्"—होना चाहिये। अर्थात् वे शुद्धाचारी (शास्त्र विहित अनुष्ठानादि जो नियमित रूप से करते हैं) सुप्रतिष्ठ (अर्थात् जिनकी ख्याति है, लोग जिनको सज्जन के रूप में जानते हैं), शुचि (जो कुअन्न भोजन नहीं करते, कुअर्थ ग्रहण नहीं करते या नीच मनुष्यों की सेवा नहीं करते), दक्ष (जो अपटु नहीं हैं, नित्यानित्य में विचारवान् हैं, ध्यानादि साधन में निपुण हैं) और सुबुद्धिमान—अर्थात् शिष्य की भ्रान्ति दूर करने में समर्थ हैं।

"उद्धर्त्तुञ्चैव संहर्त्तुं समर्थो ब्राह्मणोत्तमः ।
तपस्वी सत्यवादीच गृहस्थो गुरुरुच्यते ।।"

जो योग बल से वलिष्ठ हैं, जो उपदेश द्वारा शिष्य का अज्ञान नाश कर सकते हैं, शिष्य में शक्ति-संचार करने की सामर्थ्य जिनको है और जो उपयुक्त दण्ड द्वारा शिष्य को कल्याण मार्ग पर ला सकते हैं, जो तपः परायण हैं, सत्यवादी और गृहस्थ हैं (संन्यासी नहीं हैं), ऐसे ही श्रेष्ठ नर गुरु पद के योग्य हैं।

मन्त्रमुक्तावली में गुरु के लक्षण ये बताये गये हैं :—

"अवदातान्वयः शुद्धः स्वोचिताचार तत्परः।
आश्रमी क्रोधरहितो वेदवित् सर्वशास्त्रवित्।।
श्रद्धावाननसूयश्च प्रियवाक् प्रियदर्शनः।
शुचिः सुवेशस्तरुणः सर्वभूतेहितेरतः।।
श्रीमाननुद्धतमतिः पूर्णोऽहन्ता विमर्षकः।
सगुणोऽर्चासुकृतधीः कृतज्ञः शिष्यवत्सलः।।
निग्रहानुग्रहेशक्तो होममन्त्रपरायणः।
उहापोहः प्रकारज्ञः शुद्धात्माः यः कृपालयः।।
इत्यादि लक्षणैर्युक्तो गुरुः स्याद्गरिमाम्बुधिः।।

अगस्त्य संहिता में लिखा है:—

"देवतोपासकः शान्तो विषयेष्वपि निस्पृहः।
तत्त्वज्ञो यन्त्रमन्त्राणां मर्म्मवेत्ता रहस्यवित्।।"

विष्णु स्मृति में लिखा है:—

"परिचर्यायशोलाभलिप्सुः शिष्यादगुरुर्नहि।
कृपासिन्धुः सुसंपूर्णः सर्वसत्त्वोपकारकः।।
निस्पृहः सर्वतः सिद्धः सर्वविद्याविशारदः।
सर्वसंशयसंछेत्तानलसो गुरुराहृतः।।"

जो शिष्य से परिचर्या अथवा यश पाने के इच्छुक नहीं हैं, जो कृपालु स्वभाव वाले हैं, सभी प्राणियों के उपकार करने वाले हैं, धनादि लाभ में निस्पृह हैं, सर्व मन्त्रादि में सिद्ध हैं, सब विद्याओं में पारदर्शी हैं, सब संशयों को दूर करने में समर्थ हैं, आलस्य विहीन हैं, ऐसे व्यक्ति ही गुरु पद पाने के योग्य हैं।

अब किस व्यक्ति को गुरु बनाना निषिद्ध है यह सुनो! यामलेः—

अभिशप्तमपुत्रञ्च कदर्यं कितवं तथा।
क्रियाहीनं शठञ्चापि वामनं गुरुनिन्दकं।।

जलरक्तविकारञ्च वर्जयेन्मतिमान् सदा।
सदा मत्सर संयुक्तं गुरुं तन्त्रेण वर्जयेत्॥"

जो व्यक्ति अभिशापग्रस्त है, पुत्र विहीन है, कुत्सित कार्यों में अनुरक्त है, धूर्त है, सत्क्रिया विहीन है, शठ है, वामन है, गुरु निन्दक है, जल-रक्त विकारी (जल और रक्त का दोष जिसको है) है, मात्सर्यशाली लक्षणों से युक्त है ऐसे गुरु को शिष्य वर्जन करे।

तन्त्रसारे:—

वह्वाशी दीर्घसूत्री च विषयादिषु लोलुपः।
हेतुवादरतो दुष्टोऽवाग्वादी गुण निन्दकः॥
अरोमा बहुरोमाच निन्दिताश्रम सेवकः।
कालदन्तोऽसितौष्ठश्च दुर्गन्धिश्वासवाहकः॥
दुष्टलक्षणसम्पन्नो यद्यपि स्वयमीश्वरः।
बहुप्रतिग्रहाशक्त आचार्यः श्रीक्षयावहः॥

जो वहुत खाते हैं, दीर्घसूत्री हैं, विषयलोलुप हैं, कुतर्ककारी हैं, दुष्टाशय हैं, न कहने योग्य बातें कहते हैं, दूसरों के गुणों की निन्दा करने वाले हैं, समूचे अङ्ग में रोमविहीन हैं अथवा बहुत अधिक रोमवाले हैं, निन्दिताश्रमसेवी हैं और जिनके दाँत और ओठ काले रंग के हैं, जिनकी साँस में दुर्गन्ध मालूम होती है, दुष्ट लक्षणों से युक्त हैं और बहुत सम्पत्ति के रहते भी जो परिग्रह के लिए व्यग्र हैं, ऐसे व्यक्ति को गुरु के कार्य पर नियुक्त करने से शिष्य शीघ्र ही श्रीभ्रष्ट हो जाता है।

क्रियासार समुच्चये:—

"श्वित्री चैव गलत्कुष्ठी नेत्ररोगी च वामनः।
कुनखः श्यावदन्तश्च स्त्रीजितोऽधिकाङ्क्षकः॥
हीनाङ्ग कपटी रोगी वह्वाशीः बहुजल्पकः।
एतैर्दोषैर्विमुक्तो च स गुरुः शिष्यसम्मतः॥"

जो श्वेत कोढ़ रोग से ग्रस्त हैं, गलित् कुष्ठ के रोगी हैं, नेत्र पीड़ा से युक्त हैं, अति खर्व आकृति के हैं, कुनखी हैं, श्यावदन्त हैं (जिनके दोनों प्रधान दाँतों में एक दाँत छोटा रहता है), स्त्री-परायण हैं, जिनका कोई अङ्ग अधिक या कम है, जो मुख पर धर्म-भाव दिखाकर अन्तर्भाव छिपा रखते हैं, जो रोगग्रस्त हैं, बहुभोजी हैं, वाचाल हैं, इन दोषों से युक्त व्यक्ति ही निन्दनीय गुरु कहलाते हैं। अतएव उक्त प्रकार के दोषों से विहीन व्यक्ति ही गुरुपद पाने के योग्य हैं।

रामब्रह्म—इन सब लक्षणों को मिलाकर देखने से तो गुरु का मिलना ही कठिन है। अच्छा, अन्य वर्णों में यदि ये सब सद्गुण रहें, तो उनको गुरु बनाया जा सकता है या नहीं ?

मधु पण्डित—ब्राह्मण ही सब वर्णों के गुरु हैं। ब्राह्मण के अभाव में शुद्धचेता, भगवदेकाग्रचित्त, शान्त प्रकृति, सर्वशास्त्रवेत्ता, सत्क्रिया-नुरक्त क्षत्रिय भी गुरु हो सकते हैं। नारद पञ्चरात्र में इसका उल्लेख है। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन जातियों को क्षत्रिय, इनके अभाव में वैश्य और शूद्र को वैश्य, और शूद्र को शूद्र दीक्षा दे सकते हैं। किन्तु सभी वर्णों को विलोम में दीक्षा-कार्य निषिद्ध है। अर्थात् शूद्र को वैश्य का गुरु न बनना चाहिये या वैश्य को क्षत्रिय का गुरु न बनना चाहिये, अथवा क्षत्रिय ब्राह्मण का गुरु न बन सकेगा। यही है शास्त्र विधि। इसके प्रतिकूल स्वेच्छाचार में प्रवृत्त हो जाने से ऐहिक और पारलौकिक दोनों धर्म नष्ट होते हैं।

रामब्रह्म—तो क्या इस अवस्था में संन्यासी से मन्त्र लेना ठीक नहीं है ?

मधु पण्डित—शास्त्र का शासन तो तुमने देख लिया ? और भी सुनाता हूँ। कुलचूड़ामणि ग्रन्थ में लिखा है:—

"उदासीनोह्युदासिनां वनस्थो वनवासिनां।
यतीनाञ्च यतिः प्रोक्तो गृहस्थानां गुरुर्गृही ॥"

उदासीन के गुरु उदासीन बनें, वानप्रस्थ के वानप्रस्थावलम्बी बनें, यतियों के गुरु यतीन्द्र बनें और गृहस्थ के गुरु गृहस्थ को ही बनना चाहिये।"

कल्प में लिखा हैः—

"कलत्र-पुत्रवान् विप्रो दयालुः सर्वसम्मतः।"

रामब्रह्म—गुरु क्या हठात् जिसको-तिसको शिष्य बना लेंगे?

मधु पण्डित—निश्चय ही नहीं। गुरु शिष्य के लक्षण मिला कर देख लेंगे। शिष्य के लक्षण क्या हैं सुनो।

तन्त्रसारे—

"शान्तो विनीतः शुद्धात्मा श्रद्धावान् धारणक्षमः।
समर्थश्च कुलीनश्च प्राज्ञः सच्चरितो यतिः।
पुण्यवान् धार्मिकः शुद्धो गुरुभक्तो जितेन्द्रियः।
शिष्ययोग्यो भवेत् सोऽपि दानध्यान परायणः॥"

मन्त्रमुक्तावली मेंः—

"शिष्यः शुद्धान्वयः श्रीमान् विनीतः प्रियदर्शनः।
सत्यवाक् पुण्यचरितोऽदभ्रधीर्दम्भवर्जितः॥
कामक्रोधपरित्यागी भक्तश्च गुरुपादयोः।
देवताप्राणः कायमनोवाग्भिर्दिवानिशं॥
नीरुजो निर्जिताशेष पातकः श्रद्धयान्वितः।
द्विजदेवपितॄणाञ्च नित्यमर्चापरायणः॥
युवा विनियताशेषकरणः करुणालयः।
इत्यादि लक्षणैर्युक्तः शिष्यो दीक्षाविचारवान्॥"

भागवते एकादश स्कन्धेः—

"अमान्य मत्सरो दक्षो निर्ममो दृढ़ सौहृदः।
असत्वरोऽर्थजिज्ञासुरनसूयुरमोघवाक्॥
जायापत्यगृहक्षेत्रस्वजनद्रविणादिषु।
उदासीनः समं पश्यन् सर्वेष्वर्थमिवात्मनः॥

निषिद्ध शिष्य के लक्षण—

पापिने क्रूर चेष्टाय शठाय कृपणाय च।
दीनायाचारशून्याय मन्त्रद्वेषपराय च॥
निन्दकाय च मूर्खाय तीर्थद्वेषपराय च।
गुरुभक्तिविहीनाय न देया मलिनाय च॥

आगमसारे—

अलसामलिनाः क्लिष्टा दाम्भिकाः कृपणास्तथा।
दरिद्रा रोगिनो रुष्टो रागिणो भोगलालसाः॥
असूयामत्सरग्रस्ता सदा परुषवादिनः।
अन्यायोपार्जितधनाः परदाररताश्च ये॥
विदुषां वैरिणश्चैव त्याज्योः पण्डितमानिनः।
भ्रष्टाचाराश्च ये कष्टवृत्ययः पिशुनाः खलाः॥
वह्वाशिनः क्रूरचेष्टा दुरात्मानश्च निन्दिताः।
इत्येवमादयोऽन्ऽयेपि पापिष्ठाः पुरुषाधमाः॥
एवम्भूताः परित्याज्याः शिष्यत्वेनोपकल्पिताः।

सन्ध्या हो रही है, आज अब जाओ। किसी दूसरे दिन ये सब बातें तुम्हारे साथ होंगी।

रामब्रह्म—केवल एक बात और भी आज पूछना चाहता हूँ।

मधुपण्डित—पूछो।

रामब्रह्म—यदि कोई दीक्षा न ले तो उसमें क्या कुछ दोष है?

मधुपण्डित—यदि हिन्दुत्त्व मानना चाहो, शास्त्र मानना चाहो तो दोष तो है ही। दीक्षा ग्रहण न करने से जीवों का मङ्गललाभ नहीं होता। विवाह जैसे गृहस्थ जीवन का अपूर्व मिलन-क्षेत्र है, इसमें जिस प्रकार दो विभिन्न हृदयक्षेत्र गिरि-निःसृत दो निर्झर धाराओं की तरह मिलित होकर भगवन् पादपद्मरूप सागर सङ्गम की तरफ प्रवाहित होते हैं, उसी प्रकार दीक्षा ही जीवात्मा और परमात्मा को सम्मिलित देखने का प्रशस्त पथ है। दीक्षा के अतिरिक्त इस शुभ सम्मिलन का

दूसरा उपाय नहीं है ! गुरु ही इस जीव और शिव के संयोग क्षेत्र के सन्धिस्थल हैं, इसलिए सद्गुरु का आश्रय लेकर जीवन का अपूर्व रहस्य भेद करना प्रत्येक मनुष्य का परम धर्म है। शास्त्र ने कहा है —

अदीक्षिता ये कुर्वन्ति जपपूजादिकाः क्रियाः ।
न भवन्ति प्रिये तेषां शिलायामुप्तबीजवत् ॥

दीक्षित न होकर जप पूजादि करने से पाषाण में रोपित बीज की तरह निष्फल होता है ।

श्रुति ने कहा है—

"तद्विज्ञानार्थं सद्गुरुमेवाभिगच्छेत् ।
समित्पाणि श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥"

गीता में भगवान् ने कहा है :—

"तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥"

शास्त्र और भी कहते हैं —

दीक्षामूलं जपं सर्वं दीक्षामूलं परं तपः ।
दीक्षामाश्रित्य निवसेद् यत्र कुत्राश्रमे वसन् ॥
देवि दीक्षाविहीनस्य न सिद्धिर्न च सद्गतिः ।
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन गुरुणा दीक्षितो भवेत् ॥
अदीक्षितोऽपि मरणे रौरवं नरकं व्रजेत् ।
अदीक्षितस्य मरणे पिशाचत्वं न मुञ्चति ॥
उपपातक लक्षाणि महापातक कोटयः ।
क्षणाद्दहति देवेशि दीक्षा हि विधिनाकृता ॥
ना दीक्षितस्य कार्यंस्यात् तपोभिर्नियमव्रतैः ।
न तीर्थगमनेनापि न च शारीमन्त्रणैः ॥

रामब्रह्म—अच्छा, जो बहुत जन्मों से तपस्या करता आ रहा है, सम्भवतः कुछ बाकी है, उसको भी क्या दीक्षा ग्रहण करनी पड़ेगी ?

मधु पण्डित—पड़ेगी। शुकदेव को भी दीक्षा लेनी पड़ी थी, नारदादि को भी दीक्षा की जरूरत पड़ी थी। अर्जुन, उद्धव के भी गुरु थे। स्वयं रामचन्द्र को भी वशिष्ठ देव से उपदेश लेना पड़ा था। किन्तु दो-एक के नाम सुनाई पड़ते हैं, जो लोग जन्म-काल से ही सिद्ध हैं! उनके गुरु, उनकी आत्मा ही है; इनकी संख्या बहुत कम है। प्रह्लाद को किसी को गुरु बनाना न पड़ा था और जड़ भरत को भी किसी से शिक्षा न लेनी पड़ी थी। इसी कारण इसकी गणना साधारण नियम के अन्तर्गत नहीं की जा सकती। जिन्होंने अपने हृदय में उनको अनुभव किया है, जिनकी हृदयग्रन्थि अपने से भिन्न हो गयी है, समस्त संशय छिन्न हो गये हैं, उनको शायद दीक्षा की आवश्यकता नहीं है।



द्वितीय अध्याय

दीक्षा-तत्त्व

रामब्रह्म—उस दिन की तुम्हारी बातें सुन कर मुझे विशेष उत्साह हुआ है। भैया, तो अब दीक्षा ले ली जाय—क्या कहते हो?

मधु पण्डित—खूब खुशी से। इसमें आपत्ति ही कौन करेगा? मुझसे पूछने की जरूरत ही क्या है?

रामब्रह्म—भैया, यह क्या साधारण काम है? तुम्हारा परामर्श न लेने से क्या काम चल सकता है?

मधु—तुम तो अपनी ही बुद्धि से सब काम करते हो, फिर इस विषय में पूछने की आवश्यकता क्यों समझ रहे हो?

रामब्रह्म—यही तो तुम लोगों के पण्डित होने का दोष है। किसी तरह भी किसी बात को सीधे तौर से नहीं सुनते।

मधु—नहीं जी; बात यह नहीं है! यदि सीधी बात होती तो मैं सहज भाव से ही समझ जाता। किन्तु यह विषय तो कुछ जटिल है। इसीलिए—

रामब्रह्म—भैया तुम लोगों की सभी बातें उलटी होती हैं। कल तुम्हारी बातें सुन कर दीक्षा लेने की इच्छा हुई। इसलिए दीक्षा-ग्रहण करूँगा, इतनी ही तो बात है। इसके अन्दर जटिलता कहाँ है?

मधु—यह तो ठीक है। पर दीक्षा लोगे किससे? दीक्षा लेना भी कठिन है, दीक्षा देना भी कठिन है।

रामब्रह्म—अभी उसी दिन तुमने कहा था, दीक्षा न लेना अन्याय है। दीक्षा-हीन व्यक्ति को सद्गति नहीं मिलती। और कितने ही संस्कृत श्लोक भी तुमने सुनाये, तुम्हारी वक्तृता सुन कर ही तो मुझे डर लग गया है। कौन जाने यदि हठात् मर जाऊँ तो अन्त में ब्रह्म दैत्य होकर वृक्ष-वृक्ष पर घूमता रहूँगा। इससे तो दीक्षा ले रखना ही अच्छा है।

मधु—ओ! भूत बन जाने के डर से शायद तुम्हारा इतना उत्साह है?

रामब्रह्म—अरे बात यह नहीं है, दीक्षा किससे लूँ चिन्ता की बात तो यह है! लेनी हो तो माँ से लेनी चाहिये। किन्तु, माँ हैं स्त्री जाति। यद्यपि माँ परम गुरु हैं, तथापि स्त्री को गुरु बनाने की मेरी इच्छा नहीं होती। चाचाजी पण्डित तो जरूर हैं, किन्तु उनकी बुद्धि कुछ विकृत है, उनके प्रति मेरी श्रद्धा वैसी नहीं है; इस कारण मन्त्र लूँ किससे? तुम कहते हो दीक्षा देना कठिन है इसका क्या अर्थ है मैं समझ न सका। दीक्षा तो मेरे चाचा का छोटा लड़का भी बहुतों को दिया करता है। निरक्षर रामधन भट्टाचार्य को भी रुकावट नहीं पड़ती। किन्तु जिससे तिससे दीक्षा लेना, मुझे कठिन मालूम हो रहा है।

मधु—वे लोग किसको क्या देते हैं, यह तो मैं ठीक नहीं जानता। किन्तु, इतना तो अच्छी तरह जानता हूँ कि प्रकृत दीक्षा उन लोगों से किसी को नहीं मिलती। तुम लोग दीक्षा देना ही नहीं जानते। दीक्षा देने का तुम लोगों को अधिकार भी नहीं है।

रामब्रह्म—यह तुम क्या कहते हो, भैया! हम लोग दीक्षा दे नहीं सकते—यह कैसी बात है? मेरे चाचाजी जयराम विद्यारत्न महामहोपाध्याय हैं। मेरे पिता को एक दिग्गज पंडित कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। मेरे पितामह का नाम इस देश में कौन नहीं जानता? हम लोग आज चौदह पुश्तों से यही काम करते आ रहे हैं, और तुम कह रहे हो कि हम लोग दीक्षा देना ही नहीं जानते। हो सकता है कि पण्डित के घर में मैं ही एक मूर्ख पैदा हुआ हूँ, तो भी बाप-दादों का तरीका तो थोड़ा बहुत मालूम ही है। कुछ-कुछ तो समझता ही हूँ।

मधु—समझोगे क्यों नहीं? पूर्व पुरुषों का तरीका कुछ-कुछ क्यों सब ही मालूम है, यह तो मैं अस्वीकार नहीं करता। तुम्हारे पितामह या पिता जैसी दीक्षा देते थे और तुम्हारे चाचाजी जैसी दीक्षा देते हैं, वह दीक्षा तो तुम भी दे सकते हो। किन्तु, मैं जिस दीक्षा की बात कह रहा हूँ, वह दीक्षा दूसरी दीक्षा है—वह शिष्य विचित्र प्रकार का है—और गुरु भी विचित्र ही है।

"श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः,
शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा,
आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः॥"

जिसको बहुत से लोग सुन भी नहीं सकते, और सुन लेने से भी जिसको बहुत से लोग जान नहीं सकते, उसका वक्ता आश्चर्य-जनक है, जो उसे प्राप्त करता है वह भी आश्चर्यजनक है और निपुण

आचार्य द्वारा जो उपदेश प्राप्त होता है उसका ज्ञाता भी आश्चर्य-जनक है।

तुम समझ गये भैया, मैंने निन्दा की बात कुछ भी नहीं कही। यह दीक्षा देना बहुत कठिन है। पण्डित होने से ही यह काम कोई कर सकेगा, यह समझना भूल है। इस देश का पण्डित "उस" देश की विद्या का समाचार क्या जानेगा ?

रामब्रह्म—क्या, भैया ? तुम किस देश की दीक्षा की बात कह रहे हो। हमारे देश की दीक्षा-प्रणाली की बातें तुम नहीं कह रहे हो, तो फिर ? हरे कृष्ण ! इसे तनिक स्पष्ट कर कहो।

मधु पण्डित—ठहरिये, मेरी बात आप झट समझ गये हैं, यह सोचकर निश्चिन्त मत हो जाइये, आप जो समझ रहे हैं, मैं ठीक वैसा नहीं समझता।

रामब्रह्म—यह कैसी बात ! अरे ! तुम तो यही कहना चाहते हो न कि आज कल कितने ही ऊटपटाँग मतमतान्तर बन गये हैं, जिनमें मैंने सुना है, देशी लोग तो हैं ही साहब-मेम भी बहुत हैं ! वे लोग भूत-प्रेत मानते हैं, इहलोक परलोक मानते हैं। और, पाँच सात आदमी बैठकर प्रेतों को बुला कर उनसे वार्तालाप करते हैं। फिर, कमरे के दरवाजे बन्द करके नाक दबाने का भी काम करते हैं। फलाहार भी चलता है, मछली-मांस का भी श्राद्ध होता है ! अनेक बड़े-बूढ़े उस दल में जाकर खूब बुजुर्गी दिखाते हैं, ऐसा मैंने सुना है !

मधु पण्डित—हरे कृष्ण ! मैं नये समाजवालों की बात आप से क्यों कहने लगा ! आप अंग्रेजी विद्या के सुपण्डित हैं, उन सब विषयों को आप ही अच्छी तरह जानते हैं, हम लोग संस्कृत पाठ-शाला के पण्डित हैं। मैं तो भाई इन नये मतवादियों के पास तक नहीं जाता, मैं तो यथार्थ दीक्षा की बात कह रहा था, जो पूर्णतः भारतवर्षीय प्रथा है। कोई साहबी गन्ध उसमें नहीं है। वह हम

लोगों की सनातन आर्य प्रथा है। अनादि काल से चली आ रही है।

रामब्रह्म—अरे! देखो तो भला! मैंने अभी एक बहुत बड़ी भूल कर डाली! जो भी कहना हो, जरा स्पष्ट रूप से कहो। मैं तुम्हारी पहेली को समझना जरा कठिन देखता हूँ।

मधु पण्डित—इसमें पहेली तो कुछ नहीं है। प्राण भारतीय होने से ही मेरी बातों को समझ लेना कठिन न होगा। फिर भी, यह रास्ता सुगम नहीं है।

"क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया,
दुर्गमपथस्तत् कवयो वदन्ति।"

हम लोग साधारण व्यापारी हैं। अगम्य समुद्र में माल से लदी नाव चलाना बहुत ही कठिन काम है। इसके अतिरिक्त अपना लक्ष्य भी ठीक नहीं है; फिर जिस कार्य को आरम्भ किया है उसके ऊपर आस्था सब समय नहीं होती। इस कारण प्रवृत्ति और निवृत्ति के विपरीत गामी स्रोतों में पड़ कर निरन्तर डुबकियाँ खा रहा हूँ! इस मार्ग में प्रकाश जैसा है, अप्रकाश भी वैसा ही है। भरोसा है श्री गुरु के अभय पादपद्म का। गुरु का भी हृदय से मैं विश्वास कहाँ करता हूँ! इस संशय के पालने में भूलते-भूलते हम लोगों का जीवन समाप्त हो जाता है। कहाँ मैं छोटे से भी छोटा एक विन्दुमात्र हूँ और कहाँ वे हैं अनन्त प्रेमसिन्धु! तो भी विश्वास की नाव पर चढ़ कर बहते-बहते जो कोई उस अगम्य देश की तरफ रवाना होता है—श्री गुरु के चरण प्रसाद से भवसिन्धु के दूसरे पार वह पहुँच ही जाता है। तब "स मोदते मोदनीयं हि लब्धा।" तब वह प्रियतम प्राण सखा को पाकर आनन्द सिंधु में निमज्जित हो जाता है।

"कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां
क्रतोरनन्त्यमभयस्य पारं।
स्तोममहदुरुगायं प्रतिष्ठां।"

सभी कामनाओं की परिसमाप्ति, जगत् के कितने प्रकार के आश्रय, यज्ञ के अनन्त फल, विशाल और अनन्त कीर्ति और अपनी स्थिति,—इन सभी को तुच्छ बनाकर केवल उस अलक्ष्य देश को लक्ष्य करके चले जाना पड़ेगा। बताओ तो हृदय में कितना साहस रहना आवश्यक है! धन-जन की ममता, संसार का गूढ़ सौहृद्य, इन सभी को पीछे छोड़ कर गहन कंटकाकीर्ण रास्ता पकड़ कर चलना पड़ेगा—केवल उस अलक्ष्य देश को लक्ष्य करके। "वह अलक्ष्य देश यदि लक्ष्य में आ जाय, राह की दूरी तभी प्रकट होती है।"—यह वही देश है, यह अतलान्तक महासागर के उस पार का देश नहीं है—यह बिलकुल ही अलक्ष्य देश है। साधु-गुरु कृपा से किसी-किसी साधक का उस देश की तरफ लक्ष्य रहता है। वह उस पथ का यात्री बनने के लिए राह खर्च संग्रह करने की चेष्टा करता है। गुरु कहते हैं—"श्रद्धा का सम्बल है, नेत्रों में आँसू और प्राण में व्याकुलता है तो इसीसे आपातःतः पथ के पैसे का जुटाव हो जायगा। बहुत लम्बा रास्ता है, कन्धे पर बहुत बोझ लदा है—रे पथिक! तो भी मत डर। इसी छण उनकी बाँसुरी तू सुन लेगा। बाँसुरी का मधुर संगीत जिस ओर से बजेगा, उसी ओर से तुम चले जाना। फिर कहाँ रास्ता है—कह कर रोना न पड़ेगा। "डर नाहि कुछो, डगर नाहिं पूछो, बाँसुरी सुनत कबिरा बढ़ जाई।"—

अरे "पूछना न पड़ेगा, डर कुछ नहीं है, बाँसुरी की आवाज हो रही है, उसके पीछे-पीछे बढ़ते जाओ।" इस पथ का यही मन्त्र है। एक पागल का गान सुनो :—

से जन आमार कि ये आमार ता' जानिना।
प्राण केमन करे ताहार तरे
थाकते नारि कोथाओ घरे
ए जगत् छाड़ा हृदयभरा के बुझबे मनोवेदना।

बुकेर भितर दुरुदुरु,
प्राण सदाइ करे उडु उडु,
आर एमन करे कदिन चले ए ये चिर दिनेर यातना ॥
से आमार बँधु आमार मिता,
से आमार पिता आमार माता,
से आमार व्यथार व्यथी, साथेर साथी, सङ्ग मोर से छाड़े ना
से कोथाय थाके कोन् सुदूरे,
कभु मोर एइ अन्तःपुरे;
आमि तारे चिनलाम ना रे, से चिन्तेओ मोरे दिल ना ॥
से निकटे कि दूर-दूरान्तरे
बुझते ता ये पारलाम ना रे,
से हावाय आसे हावाय मेशे धरते तारे पारि ना ।
(से आमार) अशन योगाय, वसन योगाय,
काँदले एसे अश्रु मुछाय,
प्राण कि करे भावले तारे, भावले परे ओ आसे ना ।
कोन् पथेते पाव तारे
मन आमार ताई भावे रे,
से निराकार कि साकार बटे, तत्त्व किछु पेलाम ना ।
छुटे येते इच्छा करे,
कोन् पथेते छुटब ओरे,
प्राण कि करे ताहार तरे
दिवानिशि पुड़छे येरे
से कोन पथेई नेइक बसे आबार सकल पथेइ देय हाना ।
शुधु प्राणे उठे व्याकुलता
छुटे बेड़ाई पाइ ना कोथा
से कोथाय आछे कोथाय बा नेइ किछुई तार तो जाय नि जाना

(कभु) मोर एइ प्राणेर माझे
व्यथार मत जागे से ये
कि करे प्राण के बुझाइ कोथाय वा पाइ बुझते किछुई पारिना।
धरा यदि देय से निजे
तबेइ तार धरा साजे,
नयत केवल सेजे गुजे कोन फलइ हय ना।

रामब्रह्म—भैया, जितने सहज रूप से तुम ये बातें कह गये, सुनते-सुनते मुझे भी वही धारणा हो रही थी। सुनने में भी अच्छा मालूम हुआ, तो भी इसके अन्दर एक बात है जो मानो कहीं लुप्त हो गयी है। ठीक पकड़ नहीं सकता। इसी से सोच रहा हूँ, ये बातें जितनी सहज मालूम हो रही थीं, शायद उतनी सहज नहीं हैं।

मधु पण्डित—फिर गड़बड़ी पड़ गयी, किस जगह ?

रामब्रह्म—वही, जो तुम पाँच सात बार "अलक्ष्य, अलक्ष्य" कहते रहे। और, एक बार कटकटाकर क्या बोल गये—बातें किंतु खूब मीठी थीं। और तुम्हारा वह अन्तिम गान—उन सबको सुनकर भौंचक रह गया। मानो कुछ समझ गया—फिर अच्छी तरह समझ भी न सका। अपने मन का भाव मैं ठीक-ठीक प्रकट नहीं कर सकता। अर्थात् किसी तरह की एक जिज्ञासा अन्दर रह गयी, तो भी वह क्या है, ठीक उसे प्रकाश नहीं कर सकता। अच्छा भैया, ये सब तत्त्व बड़े कठिन हैं, हैं न ? इस युग में ये सब होनेवाले नहीं हैं। क्या कहते हो ?

मधु पण्डित—राम ! राम ! सबको होने वाले नहीं हैं क्यों ? जो बात सबकी नहीं है, वह तो किसी की भी नहीं है। जो कोई चेष्टा करेगा, जो कोई इस तत्त्व में प्रवेश करना चाहेगा, वही इस पथ का आलोक देख पावेगा। यह तो और किसी का दखल किया हुआ मकान नहीं है। तो भी उस युग के ब्राह्मण लोग सर्वस्व खोकर

इस पथ के पथिक बन गये थे, इसी कारण उनके वंशधरों को इस पथ में प्रवेश लाभ करने की कुछ अधिक सुविधा है इतनी ही बात है।

रामब्रह्म—अच्छा भैया, मैं जो दीक्षा लूँगा, वह क्या विषय है, एक बार मुझे समझा दो।

मधु पण्डित—मैं भी तो भाई, वही बात कह रहा था। दीक्षा लेना चाहते हो—अच्छी बात है, दीक्षा ले लो। किन्तु वह क्या चीज है उसे अच्छी तरह जान सुनकर उसके बाद ही दीक्षा लेना अच्छा है।

रामब्रह्म—ठीक है, मैं भी यही चाहता हूँ। कहाँ जाना है, यह न जानते हुए तेज दौड़ कर चले जाने से ही क्या गन्तव्य स्थान को पहुँचा जाता है ? इतनी सहज बात भी क्या मैं नहीं समझता।

मधु पण्डित—मैं वही बात तुमको समझाना चाहता था, अब अवश्य समझ जाओगे कि मेरी बात पहेली नहीं है।

रामब्रह्म—फिर भी भैया, तुम्हारी बात मैं अच्छी तरह समझ न सका। जो भी हो, दीक्षा विषय को मुझे अच्छी तरह समझा दो।

मधु पण्डित—दीक्षा का अर्थ है उपदेश, अथवा नियम या संकल्प करके किसी काम में प्रवृत्त हो जाना ही दीक्षा है। "दीयते ज्ञानमत्यन्तं हीयते पापसञ्चयः। तस्मात् दीक्षेति सा प्रोक्ता.... ।" जिससे पाप क्षय होता है और आत्यन्तिक ज्ञान का उदय हो जाता है उसका ही नाम है दीक्षा। पहले समझ लो पाप नामक वस्तु क्या है ? उसके बाद देखो पाप क्षय करने का क्या प्रयोजन है ? अन्तर-ग्लानि ही तो पाप है; क्योंकि वह आनन्द को आच्छादित कर रखती है, सत्य को आवृत करके वह मिथ्या की विभीषिका दिखाती है। इसीलिए पाप अन्धकार स्वरूप है; यह ज्ञान या आलोक के ठीक विपरीत है। इसलिए अज्ञान की तरह कोई दूसरा पाप नहीं है। उस अज्ञान के नष्ट हो जाने से ही ज्ञान का प्रकाश हुआ। जिससे यह

अज्ञान ध्वंस हो जाता है, ज्ञान परिस्फुट हो जाता है, उसी का नाम है असल दीक्षा। इसीलिए गुरु स्तोत्र में कहा गया है:—

"अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः।"

जो ज्ञानरूप अंजन शलाका की सहायता से मानव का मोहनाश करके ज्ञाननेत्र उन्मीलित कर देते हैं उस गुरु को मैं नमस्कार करता हूँ।

हम लोगों का उपनयन संस्कार ही हम लोगों की प्रथम दीक्षा है। इस समय हम लोग गायत्री मंत्र में दीक्षा प्राप्त करते हैं। उसके बाद चिर जीवन यह गायत्री ही हम लोगों का पथ-प्रदर्शक का काम करती है। इस गायत्री मन्त्र को अच्छी तरह समझना होगा। तभी सभी दीक्षाओं का उद्देश्य हृदयङ्गम होगा। गायत्री के स्तोत्र में है—"गायन्तं त्रायसे यस्माद् गायत्री त्वं अतः स्मृता।"—जो तुमको गाता है, उसको तुम त्राण करती हो, इसी लिए सभी तुमको गायत्री नाम से जानते हैं।

अब देखो, गायत्री हम लोगों को त्राण करती हैं, कहाँ से? इस शरीर बन्धन से त्राण करती हैं। इसलिए इस शरीर को और इसके गुणागुणों को भी खूब अच्छी तरह समझ लेना होगा। "तत् क्षेत्रं यच्च यादृक् च यद्विकारि यतश्च यत्। स च यो यत्प्रभावश्च तत् समासेन मे शृणु॥" यह क्षेत्र (शरीर) "यत्" अर्थात् इसका स्वरूप जैसा है (जड़ दृश्यादि-स्वभाव युक्त); "यादृक" जैसी इच्छादि से युक्त; "यद्विकारि" जैसा इन्द्रिय विकारयुक्त; "यतश्च" जिस प्रकार प्रकृति-पुरुष संयोग से उत्पन्न है; और "यत्" जिस प्रकार स्थावर जङ्गमादि भेदों से विभक्त है; और वह क्षेत्रज्ञ यत् स्वरूप है, और "यत् प्रभावः" अचिन्त्य ऐश्वर्य योग के कारण जैसा प्रभाव सम्पन्न है; उसे मैं संक्षेप में कह रहा हूँ सुनो।

इस क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का विचार गीता के त्रयोदश अध्याय में भगवान् ने अर्जुन को समझाया है। उस अध्याय को अच्छी तरह समझ कर पढ़ने से ही क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के सम्बन्ध में कुछ भी अज्ञात न रह जायगा।

गीता में लिखा है :—

"शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥"

जो शरीर यथार्थ ब्रह्मवीर्य से उत्पन्न होता है, उसकी स्वाभाविक प्रवणता तपस्या की तरफ रहेगी ही। शम-दम-शौचादि साधन में उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति उत्पन्न होगी ही। यह उनका स्वभाव लोगों को दिखाने के लिए नहीं है; उन्होंने जो शरीर प्राप्त किया है यह सब उसकी ही स्वाभाविक क्रिया है। यदि किसी तरह से उनका यह संस्कार आच्छादित रहे, तो उस अवस्था में किसी विशेष घटना को आश्रय करके उनकी स्वाभाविक शक्ति किसी न किसी दिन अपने आपको परिस्फुटित करने की चेष्टा करेगी ही। यदि न करे, तो समझना होगा कि उसके जन्म में कोई गड़बड़ी है। क्षान्ति, सरलता, आस्तिक्य, ज्ञानानुराग—ये सब ब्राह्मण की स्वाभाविक मनोवृत्तियाँ हैं। इन सब लक्षणों से ब्राह्मण को अब भी पहचाना जाता है। इन दिनों, कालप्रभाव से, जलवायु के प्रभाव से ब्राह्मण का वर्ण, स्वर, गठन आकृति सभी ने ह्रस्वता प्राप्त कर ली है, किन्तु इन सब अन्त-र्निहित गुणावलियों से अब भी ब्राह्मण को पहचान लेना कुछ भी कठिन नहीं है।

उपर्युक्त प्रकार की वृत्तियाँ जिनके स्वभावसिद्ध हैं, वे ही लोग यथार्थ ब्रह्म गायत्री मन्त्र के अधिकारी हैं। इस गायत्री मन्त्र में सिद्धि लाभ करने से ही ब्राह्मण, "ब्राह्मण" हुए। तब वेदज्ञान स्वतः प्रकाशित सूर्य-रश्मि की तरह उनके चित्ताकाश को आलोकित कर रखेगा। इसलिए आत्मा का ऐक्य और अविनश्वरत्वभाव उनके

निर्मल चित्त में प्रतिबिम्बित होकर उनको सब तरह की दीनता, असत्य और मृत्यु से परित्राण देते रहते हैं। इसी स्थान पर ब्राह्मण के लिए गायत्री का "गायत्री" नाम सार्थक होता है।

गायत्री उपासना का प्रकृत उद्देश्य ही हुआ आत्म-ज्ञान द्वारा आत्मा का विश्व-व्यापकत्व भाव की उपलब्धि करना। अब चेतना ने केवल जिस स्थूल शरीर पर अधिकार कर रखा है, वह केवल स्थूल नहीं है—अत्यन्त सूक्ष्म है; और "बोध" या "ज्ञान" इस सूक्ष्म और सूक्ष्मतर कारण देह के भी अतीत है, इसको लक्ष्य करा देना ही गायत्री का कार्य है। चेतना स्थूल शरीर में आबद्ध रहने के कारण और हम लोगों की इन्द्रियाँ बहिर्मुख होने के कारण, आपाततः देहातिरिक्त "अहं" को सोचा नहीं जा सकता। "अहं" को याद करने के साथ ही देह की याद आ जाती है, देह को छोड़कर किसी हालत में भी "अहं" को सोचा नहीं जा सकता। किन्तु नींद में रहने पर जब हम लोग स्वप्न देखते हैं तब स्थूल शरीर मौजूद रहने पर भी, चेतना सूक्ष्म शरीर में व्याप्त रहती है। तब स्थूल शरीर पर हलका आघात करने या शरीर के ऊपर कोई बोझ दबा देने से भी, वह कुछ समझ नहीं पाता, क्योंकि तब चेतना स्थूलाभिमानिनी नहीं रहती। किन्तु उस समय "अहं" नहीं रहता यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि उस समय भी स्वप्नघटित सभी बातों में एक द्रष्टा विद्यमान रहता है। यह "अहं" या "द्रष्टा" सूक्ष्म शरीराभिमानी है। सुषुप्ति अवस्था में भी कारण शरीर को व्याप्त करके जो चैतन्य रहता है वही कारणशरीर का "अहं" है।

सुषुप्ति के बाद तुरीयावस्था में जब इस कारणशरीर में भी "अहं" ज्ञान नहीं रहता, उस समय का "अहं" फिर किसी शरीर से सम्बन्ध नहीं रखता और न तो उसमें कोई विशिष्ट ज्ञान रहता है। तब वह निरुपाधिक विश्व-व्यापी हो जाता है। यह "अहं" ही तब

वासुदेव हो जाता है। एक ही छोटी सी आग की चिनगारी में भी विश्व-दाहिका शक्ति विद्यमान रहती है, उसी प्रकार यह सोपाधिक स्थूलाभिमानी "अहं" ही निरुपाधिक और विश्वमय होकर "वासुदेव" हो जाता है। यह जो "अहं" का प्रसाद है, यही "अहं" का यथार्थ स्वरूप है, और यही गायत्री उपासना का लक्ष्य है; इस कारण यह जानने के लिए कि गायत्री उपासना क्या है, ओंकार की उपासना करनी पड़ती है! ओंकार की साधना ही हुई प्रकृत गायत्री की साधना। ओं=अ+उ+म+ँ (नाद विन्दु)+अव्यक्त (नाद विन्दु की अतीत अवस्था)! जो चैतन्य इस शरीरत्रय में और उसके अतीतभाव में मौजूद है, वही है ओं। इसी कारण महर्षि पतञ्जलि ने कहा है—"प्रणवस्तस्य वाचकः।" अब तुम समझ रहे हो कि इस साधना में जो पक्के हैं, उनके लिए परित्राण पाना जरा भी कठिन नहीं रहता।

हम लोग जिस तरह गायत्री मंत्र का उच्चारण करके प्रति दिन जप करते हैं, वह ठीक गायत्री की उपासना नहीं है। वह बहुत ही स्थूल अनुष्ठान मात्र है। तो भी मैं यह बात निश्चित रूप से कह सकता हूँ, जो श्रद्धा के साथ प्रति दिन गायत्री का अर्थ मनन करके जप करते रहते हैं, वे क्रमशः अपने अन्तःकरण में यह अनुभव कर सकेंगे कि वह एक ही विराट चैतन्य "भूर्भुवः स्व" को व्याप्त किये हुए हैं। "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति"—उनके अस्तित्व से ही इस त्रिलोक का अस्तित्व है, उनके प्रकाश से ही इस जगत् का प्रकाश है, उनका आनन्द ही इस विश्वब्रह्माण्ड के जड़-चेतन में हँस रहा है। तब वह समझ सकता है त्रिलोक की आत्मा ही उसकी आत्मा है। इस कारण लोगों का चित्त वहिर्मुख होने पर भी, भेद बुद्धि सम्पन्न होने पर भी वह समझ सकता है कि त्रिलोक के साथ और त्रिलोकस्थ जीवों के साथ उसका सम्बन्ध नित्य और सत्य है। उसे समझ सकने से ही मालूम हो जाता है कि यह आत्मा "न जायते म्रियते

वा कदाचित्।" जब तक आत्मा के इस अमृतत्व में विश्वास नहीं होता तब तक समझना होगा कि गायत्री साधना पूर्ण नहीं हुई है, इसीलिए दीक्षा की आवश्यकता है। "वासुदेवः सर्वमिति"—यही जान लेना ही अन्त है। यही असल वेदान्त है। जिस विद्या से इस ज्ञान का विकाश होता है उसी का नाम है ब्रह्मविद्या। ऋषिगण इसी विद्या का खूब आदर करते थे। "अथ परा यया तदक्षरम धिगम्यते"—अक्षर पुरुष को जिसके द्वारा जान लिया जाता है वही है परा विद्या। इस विद्या को जब शिष्य जन्मजन्मान्तर सञ्चित प्रकृति के फलस्वरूप सद्गुरु द्वारा प्राप्त होते हैं; तभी उनकी यथार्थ दीक्षा होती है। इस दीक्षा द्वारा ही जीवात्मा के साथ परमात्मा का, ससीम के साथ असीम का योग साधन होता है।

जो चीजें परस्पर अनुरूप नहीं हैं, या जो एक धर्मयुक्त नहीं हैं, उनमें सद्भाव नहीं होता, उनका मन मेल नहीं खाता। जल के साथ ही जल मिलता है, किन्तु पत्थर के साथ क्या जल मिल सकता है? धूलि के साथ धूलि मिल जाती है। इस प्रकार जो एक धर्मयुक्त हैं, वे एक दूसरे से मिल जाते हैं, विरुद्ध धर्मी एक दूसरे के साथ मिल नहीं सकते। आपाततः एक धर्मयुक्त न होने पर भी उनके मिलन के अन्तराय स्वरूप जो सब विरुद्ध धर्म हैं, उनका परिहार न करने से किसी दिन भी उनमें मेल नहीं होता। यह जीवात्मा और परमात्मा भी यदि एक धर्मयुक्त न होते तो, किसी दिन भी वे एक दूसरे के साथ मिल नहीं सकते थे, और वे कभी परस्पर के "सखा" न हो सकते थे। किन्तु जीव के साथ जीव का या जीव के साथ परमात्मा का जो वाह्यतः भेद दिखाई पड़ता है, वह कुछ वाह्य आवरणों या संस्कार का भेद मात्र है! उस आवरण को हटा देने से ही फिर कोई भेद रह नहीं सकता। जीव के साथ जीव का, या जीव के साथ परमात्मा का जो तत्काल विरुद्ध अवस्था दिखाई पड़ रही है, वह जीव की स्वरूपगत भिन्नता नहीं है, वह

केवल एक वाह्य संस्करण का आवरण मात्र है। साधन की सहायता से उसको हटाया जा सकता है, और उसके हटाये जाने के साथ तुरन्त ही जीव का जीवत्व दूर हो जाता है, और उसकी स्वरूप सत्ता में शुद्ध अपापविद्ध भाव पूर्ण परिस्फुट हो उठता है। तब नदी जैसे समुद्र में आत्म विसर्जन करती है, वैसे संस्काराच्छन्न जीव संस्कारमुक्त और निर्मल होकर उस ब्रह्म समुद्र में अपने आपको खो देता है। जीवन की ऐसी सुन्दर परिसमाप्ति दूसरी नहीं है। ऐसा मिलन-माधुर्य और कहीं भी विकसित नहीं हो सकता। उस मिलन से सौंदर्य को और भी महिमान्वित करने के लिए ही प्रकृति देवी की अनन्त रूप राशि मानो और भी दिग्‌दिगन्त में भर उठती है। शारद ज्योत्स्ना से तारका मणि मण्डित नीलाकाश मानो और भी हँसने लगता है। मलयानिल धीरे-धीरे मन्द गति से हिल्लोलित होता रहता है। शिशिर स्नात सद्य प्रस्फुटित कुसुमों की सौरभधारा स्तर-स्तर पर दिग्‌दिगन्त में तरंगायित होती रहती है। मृदु कम्पन से वृक्ष-शाखाएं, लता-पत्तियाँ फल-फूल सभी मानो अपने हृदय का आनन्दोच्छ्‌वास घोषणा करते रहते हैं। विहंगकुल हर्ष से गा उठते हैं। हरिण सचकित होकर मुग्ध नेत्रों से किसी का सौंदर्य देखता रहता है। सब ही मानो आनन्द रस पूर्ण हो जाता है। सभी मानो भावों से डगमगाने लगते हैं। प्रकृति के इस सुमधुर मिलन-क्षेत्र में रसराज रसिक शेखर स्वकीय चरणाश्रिता भक्ति विह्वला सखियों के साथ मधुर रासरस में निमग्न हो जाते हैं। यह है अनन्त आनन्द, अनन्त यौवन, अनन्त माधुर्य और अनन्त मिलन! "एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।" आओ भाई हम लोग इस रस के अधिकारी न होते हुए भी, उन भक्तिमती, कृष्णैकसर्वस्वा गोपाङ्गनाओं के पाद-पद्मों में प्रणत हो जायँ। उनके मिलन-सम्भोग से जो एक निर्मल अपार्थिव आनन्द रस की धारा प्रवाहित हो रही है, आओ, उस धारा में एक बार इस हृदय को डुबा दें।

भक्त के साथ भक्त के जीवन-नाथ का जो मिलन है, वह एक अपूर्व बात है। चलो, भक्त जीवन की अपूर्व सार्थकता, अकैतव फलसंधान हीन प्रेम देखकर अपने जीवन को सार्थक करें! यह तो एक अभिनव, नित्य नूतन रस है। इस रस के साथ संसार के और किसी रस की तुलना ही नहीं होती।

रामब्रह्म—भैया, ठहरो, आदि से अन्ततक सभी बातें समझ लूँ। फिर सब कुछ गड़बड़ मालूम होने लगा है! इतनी देरतक मैं खूब समझ रहा था। एकाएक तुम्हारे उद्गार से मेरा सारा समझना मानो कहीं बह जाने को है।

मधु पण्डित—भाई, यदि बह ही जाओ और अपने को सम्हाल ही न सको तो भी चिन्ता मत करो। मैं साफ ही देख रहा हूँ तुम्हारी आँखों में आँसू आ रहा है। तुम्हारे हृदय में भावों का जो उत्स निकल रहा है, फिर उसका मुँह बन्द मत कर देना। यह जो प्रेम का ज्वार आ रहा है, जान लो, इस शुभ क्षण में ही जीवन नौका को बहा देना पड़ेगा।

रामब्रह्म—नहीं भैया, तुम भूल कर रहे हो। मेरे इस कठिन हृदय में भक्ति का उत्स फूट उठने की सम्भावना नहीं है। मुझे अभी पूछने की अनेक बातें हैं, जो पीछे किसी समय होंगी, आज तो घर जा रहा हूँ।

—:o:—

तृतीय अध्याय

गुरु विचार और साधना का स्तर

रामब्रह्म—भाई, दीक्षा के सम्बन्ध में तुमने उस दिन कुछ और बताने को कहा था, आज बताओ न? ये बातें मीठी लगती हैं। मेरे मन के अनेक सन्देह मिटते जा रहे हैं।

मधु पण्डित—आज तुमको एक गुरुतर विषय बताऊँगा। वह गुरु के सम्बन्ध में है। गुरु के साथ शिष्य का क्या सम्बन्ध है, और गुरु की आवश्यकता ही क्या है, गुरु कितने प्रकार के होते हैं, गुरु का क्या काम है, ये सब बातें बताने का मैंने विचार किया है। ये बहुत ही गुह्य हैं, ध्यान देकर सुनते चलो।

रामब्रह्म—क्या गुरु के भी श्रेणी भेद हैं ? तो इस अवस्था में क्या बार-बार मन्त्र बदलने पड़ते हैं ?

मधु—ओः, उन्हीं बातों को बता रहा हूँ। घबड़ाओ मत। इस सम्बन्ध में जो कुछ ज्ञातव्य हैं, सब ही तुमको सुनाऊँगा, तुम धैर्य धारण करके सुन सको तो काम बन जायगा।

रामब्रह्म—हाँ, इन विषयों से नींद आने की बात ही है। किन्तु जो भी हो, अबतक तो मैं एक प्रकार से सुनता ही जा रहा हूँ। अब अन्त तक नींद न आने से ही बच जाऊँगा। बीच-बीच में तुम ऐसी दो एक बात कहते हो कि, उस सम्बन्ध में जरा सोचने पर भी किसी सिद्धान्त पर मैं पहुँच नहीं सकता और नींद आने लगती है जो भी हो, इन बातों को जरा बचाकर कहने से ही मैं अच्छी तरह सुन सकूँगा।

मधु पण्डित—पहली बात यह है कि, जिनको गुरु बनाओगे उनको मनुष्य समझने से काम न चलेगा। गुरु में मनुष्य-बुद्धि शास्त्र में निषिद्ध है ❀।

रामब्रह्म—यह क्या भैया ! गुरु तो जीवित साक्षात् मनुष्य हैं। उनको मनुष्य न समझकर और क्या समझ सकता हूँ, तुम ही बताओ ?

❀ गुरौ मनुष्यता बुद्धिः शिष्याणां यदि जायते।
नहि तस्य भवेत् सिद्धिः कल्पकोटिशतेरपि ॥
तस्माद्देवेशि नियतं श्रीगुरुं शिवरूपिणम्।
संचिन्तयेदतः प्राज्ञस्ततः सिद्धिमवाप्नुयात् ॥

मधु—गुरु का हाड़ माँस वाला शरीर तो गुरु नहीं है। शरीर तो पञ्चभौतिक है, वह तुम्हारा भी जैसा है, सभी का वैसा ही है, फिर ध्वंस हो जायगा। इसलिए गुरु कहने से इस शरीर को समझ लेने से काम न चलेगा। गुरु हैं अशरीरी पुरुष।

रामब्रह्म—वाह, शरीर को छोड़ देने से मैं भी तो अशरीरी पुरुष हूँ, तो मैं ही अपना गुरु नहीं हूँ क्यों?

मधु—तुमको जरा समझने में भूल हो रही है। "तुम" कहने से तुम अपना शरीर समझ रहे हो कि नहीं यहीं पर भारी गलती रह जाती है। "तुम" शरीर नहीं हो आत्मा हो,—यह बात यदि समझ सको, तो उस अवस्था में तुम ही तो अपने गुरु हो। शास्त्र ने तो कहा ही है "आत्मा वै गुरुरेकः।" एक आत्मा ही गुरु है। इसीलिए शास्त्र ने ऊँचे स्वर से घोषणा की है—

"न गुरोरधिकं शास्त्रं न गुरोरधिकं तपः।
न गुरोरधिको मन्त्रः न गुरोरधिकं फलम्।।
न गुरोरधिका देवी न गुरोरधिकः शिवः।
न गुरोरधिका मुक्तिर्न गुरोरधिको जपः।।"

गुरु का अर्थ क्या है जानते हो? गुरु का अर्थ केवल एक मनुष्य नहीं है, गुरु का अर्थ है—प्रकाश, ज्ञान, ज्योति। इसीलिए अविद्या का अन्धकार भेदकर जो सत्य का आलोक दिखा देते हैं, वे ही यथार्थ गुरु कहलाने योग्य हैं। शास्त्र में क्या कहा है जानते हो?

"गुकारश्चान्धकारः स्याद् रुकारस्तेज उच्यते।
अज्ञान ध्वंसकं ब्रह्म गुरुरेव न संशयः।।"

"गु" शब्द का अर्थ अन्धकार है, और "रु" शब्द का अर्थ तेज है। स्वकीय तेज या ज्ञान द्वारा तिमिर नाश करते हैं इसलिए ब्रह्म ही गुरु स्वरूप हैं, इसमें संशय नहीं है!

"गुकारः प्रथमो वर्णो मायादि गुण भासकः ।
रुकारो द्वितीयो ब्रह्ममायाभ्रान्तिविमोचकः ।।"

गुरु के प्रथम वर्ण "गु" से मायादि गुण, और "रु" इस वर्ण से माया-भ्रान्ति विमोचनकारी ब्रह्म को समझना चाहिये ! अर्थात् "गुरु" इस शब्द से ब्रह्म के सगुण और निर्गुणभाव प्रतिपादित हुए !

अब देखो अन्धकार में कुछ दिखाई नहीं पड़ता यह ठीक है, इसलिए यदि कोई अन्धकार में चलना चाहेगा, तो पग-पग पर उसका पद स्खलन होगा ही यह बात तुम मानते हो न ? किन्तु कोई यदि उसके हाथ में एक दीपक दे दे तो उस दीपक की सहायता से वह रास्ता भी देख पाता है और उसकी यात्रा भी विघ्नशून्य होती है । ठीक उसी प्रकार इस संसार में आकर और इस पञ्चभूतों के फन्दे में पड़कर मनुष्य अपना गन्तव्य स्थान ठीक नहीं कर सकता । यह जगत् काण्ड एक तरह से भूलभुलैया सा है, सब ही यहाँ अस्पष्ट है । जिससे वह भूलभुलैया मिट जाता है, अन्धकार दूर हो जाता है, और सब ही स्पष्ट हो उठता है, वही है आलोक या ज्ञान । यह शरीर भी देखो एक प्रकार का भूलभुलैया है । यह कुछ भी नहीं है, एक बार आँखें बन्द कर देने से ही सब ठाट बाट खतम हो जाता है, फिर भी जब तक हम जीवित रहते हैं, इस शरीर को एक जड़ अनात्म पदार्थ कह कर मान ही नहीं सकते । जितनी बार अपने को सोचते हैं, इस शरीर की ही याद पड़ती है, शरीर के अतिरिक्त आत्मा को किसी तरह भी अलग नहीं सोचा जा सकता । किन्तु यह कितनी झूठी बात है, यह मृत्यु के दिन ही सविशेष समझ लिया जाता है, तो भी इस असत्य को छोड़ कर रहने का उपाय नहीं है । समझ रहे हो कैसी अज्ञानता ने जकड़ रखा है । यही तुम्हारे "गु" शब्द का लक्ष्यार्थ है । और "रु" क्या है जानते हो ? जब आलोक प्रकाशित होता है, अज्ञानता मिट जाती है, आत्मा का ज्योतिर्मय स्वरूप फूट उठता है, तब इस शरीर को किसी तरह फिर

"मैं" कहने की इच्छा नहीं होती। शरीर को स्पष्ट रूप से ही आत्मा से एक स्वतन्त्र वस्तु समझने की धारणा हो जाती है। तब शरीर के सुख दुःख से मनुष्य को सुख दुःख नहीं भासता। यह किस तरह जानते हो ? हीरा समझ कर तुम यदि एक पत्थर को पिटारी में छोड़ रखो, उसके बाद यदि प्रमाणित हो जाय कि वह एक साधारण पत्थर का टुकड़ा है, तब जैसे उसे फेंक देने में कष्ट नहीं मालूम होता उसी प्रकार इस शरीर को जब "अनात्म" पदार्थ मान लेने की सच्ची धारणा हो जाती है, तब इसके लिए वर्तमान की तरह कोई आकर्षण नहीं रह जाता। राजा दिलीप ने कहा था—"पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु।" "अन्तवन्तु इमे देहा नित्यस्वेक्ता शरीरिणः"—यह जो बोध है यही है आत्मबोध और यही है "रु" शब्द का लक्ष्यार्थ, यही भाव है "गुरुभाव"। इसीलिए जो शरीरधारी होते हुए भी आत्मबोध नहीं रखते या आसक्ति नहीं रखते अर्थात् आत्मा का जहाँ स्वतः प्रकाश है, वे शरीरधारी, ज्ञानमय, आनन्दमय पुरुष गुरु मान लेने योग्य हैं। श्रुति ने कहा है—"ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।" इसीलिए शरीर के रहते हुए भी ज्ञानवान पुरुष आत्मा के ही स्वरूप हैं। इस अनन्त शक्ति सम्पन्न, अपार करुणानिधान आत्मज्ञ गुरु की महिमा देख कर शास्त्र ने आनन्द के साथ घोषणा की :—

"गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो गुरुर्गतिः।
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन॥"

गुरु ही पिता हैं, गुरु ही माता हैं, गुरु ही देवता हैं और गुरु ही एकमात्र गति हैं। शिव के रुष्ट हो जाने पर गुरु उद्धार कर सकते हैं, किन्तु गुरु के रुष्ट हो जाने पर फिर किसी की सामर्थ्य नहीं है कि रक्षा कर सकें।

"श्वेताम्बरं श्वेतविलेपयुक्तं
मुक्ताफलैर्भूषित दिव्यमूर्तिम्।

वामाङ्गपीठस्थित दिव्यशक्तिम्
मन्दस्मितं पूर्णकृपानिधानम् ।।
आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं
ज्ञानस्वरूपं निजबोधयुक्तं ।
योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं
श्रीमद्गुरुं नित्यमहं भजामि ।।"

जो श्वेत वस्त्रधारी हैं, श्वेत चन्दन से चर्चित हैं, मुक्ताफल से अलंकृत और दिव्य मूर्ति धारी हैं, जिनकी बायीं तरफ दिव्य शक्ति समासीना हैं, जिनका मुख मन्द मन्द हास्य से शोभित है, जो परिपूर्ण कृपालु हैं, आनन्दमय और आनन्ददाता हैं और जो सदा प्रसन्न रहते हैं, स्वयं ज्ञान स्वरूप हैं, निज बोधयुक्त, योगीन्द्रगणों के पूजित हैं और जो संसार के एक मात्र वैद्य स्वरूप हैं उस गुरुदेव को मैं सर्वदा भजता हूँ ।

जिनमें ऐकान्तिक गुरु भक्ति है उनके ही सम्मुख परमार्थ तत्त्व प्रकाशित होता है । वे ही भव संसार के दूसरे पार चले जाते हैं । शिवजी ने कहा है—

"यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मभिः ।।

जिस व्यक्ति में देवता के प्रति और देवता की तरह गुरु के प्रति पराभक्ति है, महात्माओं के बता देने से उनके ही सम्मुख ये सब विषय (परमार्थ तत्त्व) प्रकाशित होते हैं ।

यह गुरुदेव ही परम कृपायुक्त होकर शिष्य का अज्ञानान्धकार मिटा देते हैं, "मेरा स्वरूप" मेरे सामने प्रकाशित कर देते हैं । कानों से जो कुछ मैंने सुना था, जिनको मैंने आँखों से कभी नहीं देखा—उसी "कविं पुराणं अनुशासितारं" परम ध्रुव को दिखाकर वे कहते हैं—यही वस्तु "वह" है, तुमने जो देखा, "सब जीवों में

वे ही विहार कर रहे हैं"—सभी जीवों में ही तुम्हारी यही आत्मा प्रकाशित है। तब भक्ति गद्‌गद् कंठ से हाथ जोड़ कर शिष्य गुरु देव को इस मन्त्र से प्रणाम करते हैं:—

"अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शित येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥"

याद रखो, ये हुए महान्त-गुरु, और जिनको इन्होंने दिखाया "वे ही प्रकट होते हैं चैत्य गुरु के रूप में।"

उसके बाद जब शिष्य में और भी स्वतः सिद्ध ज्ञान की निर्मल कौमुदी फूट उठती है, तब वह उसी ज्ञान लोक में देख पाता है कि, वही एक ही आत्मा सब भूतों में अवस्थित है। तो फिर पराया कौन है, सभी तो अपने हैं, सभी आत्मा हैं, सभी गुरु हैं। तब निर्धूत कल्मष शिष्य विश्वमय एक चिद् गुरु को देखकर यह कह कर प्रणाम करता है:—

"मन्नाथः श्री जगन्नाथो मद् गुरुः श्री जगद्‌गुरुः।
मदात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

तब जिनके प्रसाद से वे इस देहपाश से मुक्ति प्राप्त करके भव भय से परित्राण पा जाते हैं और परमानन्द के अधिकारी होकर उनको स्मरण करके भक्ति गद्‌गद् कंठ से गा उठते हैं:—

"संसारवृक्षमारूढाः पतन्ति नरकार्णवे।
येनोद्‌धृतमिदं विश्वं तस्मै श्री गुरवे नमः॥
स्थावरं जङ्गमं व्याप्तं यत् किंचित् सचराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥
चिन्मयं व्यापितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥
अनेक जन्म संप्राप्त कर्मबन्धविदाहिने।
आत्मज्ञान प्रदानेन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥
गुरुरादिरनादिश्च गुरुः परमदैवतम्।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः॥"

जीव संसार रूप वृक्ष पर आरोहण करके नरक-समुद्र में निमग्न होता रहता है, इस घोर नरक से जो जीवों को बचा लेते हैं उस गुरु चरण में मेरा नमस्कार हैं। जो इस स्थावर-जङ्गमात्मक समूचे संसार को व्याप्त करके अधिष्ठित हैं, और जिन्होंने परब्रह्म पद दिखा दिया है, उस गुरु देव को मैं प्रणाम करता हूँ। चिन्मय परब्रह्म इस स्थावर जङ्गमात्मक को व्याप्त करके अधिष्ठित हैं, उस ब्रह्मपद को जिन्होंने दिखाया है, उस गुरु देव को मैं प्रणाम करता हूँ। जीव बहुजन्मों के कर्म बन्धन में आबद्ध होकर जन्म ग्रहण करता है; जो आत्म-ज्ञान प्रदान करके उस कर्मपाश से जीवों को परित्राण करते हैं, उस गुरुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ। गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, और गुरु ही शिव स्वरूप हैं; गुरु ही परब्रह्म हैं; अतएव उस गुरु देव को मैं प्रणाम करता हूँ। गुरु ही विश्व के आदि हैं, किन्तु स्वयं वे अनादि हैं, श्री गुरु ही सर्व देवों में श्रेष्ठ हैं, गुरु से प्रधान और कोई भी नहीं है, अतएव उस गुरु को मैं प्रणाम करता हूँ।

उसके बाद जब साधक का स्वस्वरूप में अवस्थान होता है, निर्विकल्प समाधि योग से शीत-उष्ण, सुख-दुःख, द्वन्द्व-मोह मिट जाता है, समस्त भूर्भुवः स्व को अपने से पृथक् बोध नहीं होता, सब ही जब एक अखण्ड सच्चिदानन्द के प्रकाश रूप में ही अनुभूत होता है, जब जड़ और चेतन रूप में कोई भेद नहीं रहता, जन्म-मृत्यु का कोई भूलभुलैया नहीं रह जाता, स्त्री-पुरुष कहकर कोई लिङ्ग भेद नहीं रहता, ऊँच-नीच का कोई पार्थक्य अनुभूत नहीं होता, तब आत्मा रूप गुरु की तुरीय मूर्ति प्रकट हो जाती है। शिष्य

तब ब्रह्मानन्द में विभोर हो जाता है। द्वन्द्व, मोह-माया और भ्रान्ति के अतीत होकर अपने में आप ही स्तब्ध हो जाता है। यही है निर्विकल्प अवस्था। यह अवस्था जब बीत जाती है और बुद्धि पर फिर पञ्चतत्त्व की छाया पड़ती है, "अहं ममेति" बुद्धि अस्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है, तब भी वह चरम ज्ञान उसके मन से दूर नहीं हो जाता। जैसे कस्तूरी किसी पात्र में रख कर बाद को उठा लेने पर भी उस पात्र में उसकी गन्ध बहुत देर तक रह जाती है, वैसे ही जिस साधक ने समाधिस्थ होकर आत्मा का निर्विकल्प, अखण्डत्व और "शान्तं शिवमद्वैतं"—इस भाव की उपलब्धि की है, वह पुनः शरीर में वापस आ जाने पर भी उस ब्रह्मानन्द को भूल नहीं जाता, वह भाव उसके मन में लगा रहता है। तब वह उस अवस्था का स्मरण कर के तुरीय गुरु को प्रणाम करता है—

"ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम्।
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्॥
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वदा साक्षीभूतं।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि॥
नित्यं शुद्धं निराभासं निर्विकारं निरञ्जनम्।
नित्यबोधं चिदानन्दं गुरुं ब्रह्म नमाम्यहं॥
चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरञ्जनम्।
विन्दुनादं कलातीतं तस्मै श्रीगुरवे नमः॥
ॐ नमः प्रणवार्थाय शुद्धज्ञानैकमूर्त्तये।
निर्मलाय प्रशान्ताय दक्षिणामूर्त्तये नमः॥
निधये सर्वविद्यानां भिषजे भवरोगिणाम्।
गुरवे सर्वलोकानां दक्षिणामूर्त्तये नमः॥"

रामब्रह्म—भाई! आज मैंने तुमसे अपूर्व तत्त्व सुना। अब तुमसे एक बात पूछता हूँ। गुरु का जाति विचार इस सम्बन्ध में क्या चलेगा? जो आत्मवान् और आत्मज्ञ पुरुष हैं, उन्हे भेद

बुद्धि नहीं होती, इसलिए जाति भी नहीं है। तब मैं क्यों गुरु का जाति विचार करूँ ?

मधु पण्डित—शास्त्रविधि मान कर चलना चाहिये। "वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः।" इसलिए गुरु ब्राह्मण ही होना उचित है। ब्राह्मणों को एक तरह से 'गुरुओं की जाति' कह सकते हैं। किन्तु पहले जिन गुणों का उल्लेख किया गया है वे गुरु में हैं या नहीं इसकी परीक्षा कर लेनी चाहिये। यह परीक्षा कठिन नहीं है, दो-एक महीना एक साथ रहने से गुरु के गुणागुण समझ सकोगे। जिन लोगों को थोड़ा सा भी धैर्य या अवसर नहीं है, उनके भाग्य में जो हो होने दो। यह जो मन्त्रदाता गुरु हैं, प्रथम गुरु हैं। किन्तु जो द्वितीय गुरु अर्थात् सद्गु रु या महान्त गुरु होंगे, वे ब्राह्मण नहीं भी हो सकते। सद्गुरु की कोई जाति या उनका कोई लिङ्ग वास्तव में रह नहीं सकता। वह गुरु अजीब देश के रहने वाले हैं, वहाँ भेदाभेद की कोई बात नहीं है। वह देश देशाचार और लोकाचार के परे हैं। वहाँ विधि-निषेध वर्जित है। यह किस तरह जानते हो ?

"गुप्त आनन्दधामेर मेला
से ये नित्यं देवदुर्लभं तोरा देखबि के आय एइ बेला।"

इस सद्गुरु का शूद्र शरीर भी हो सकता है, म्लेच्छ शरीर भी हो सकता है। किन्तु याद रखना, वे ऋषि पदवी पर आरूढ़ हैं, वे मन्त्रद्रष्टा हैं, वे महान्त गुरु हैं, वे आप्त हैं, वे कोई दूसरी जाति नहीं हैं। किन्तु सभी सद्गुरु मन्त्रद्रष्टा ऋषि नहीं हैं। वे लोग सम्पूर्ण भेद भावों के अतीत नहीं हैं। फिर भी वे लोग महापुरुष हैं; क्योंकि उन्होंने आत्म-साक्षात्कार प्राप्त किया है, सिद्धि प्राप्त की है। किन्तु "बहूनां जन्मनामन्ते" जो ज्ञानी-पुरुष विश्व को वासुदेव समझते हैं, उस अवस्था के मनुष्य अति ही दुर्लभ हैं। ये ही लोग असल महान्त गुरु हैं। ये लोग संसार में जगद्गुरु के नाम से भी पूजित होते

हैं। सनक, सनन्द, सनातन, वशिष्ठ, ब्यास, नारद, कपिल, शुकदेव आदि इस श्रेणी के गुरु हैं। शास्त्र इन लोगों को ईश्वरावतार कहने में भी कुंठित नहीं हुआ है।

गुरु तत्त्व कुछ-कुछ समझ गये तो ? अब शिष्य के सम्बन्ध में कुछ बातें बताता हूँ, सुनो। पहले समझ लो शिष्य किसको कहते हैं। "शासित होऊँगा" यही जिनकी इच्छा हो वे ही प्रकृत शिष्य हैं। इसलिए सिर ऊपर उठा कर, बड़े बन कर शिष्य बना नहीं जाता। शिष्य बनने के लिए निरभिमान बनना पड़ता है। अपनी कहलाने वाली जो भी वस्तु हो सब ही उनको अर्पण करना पड़ता है।

"दीर्घदण्डं नमस्कृत्य निर्लज्जो गुरु सन्निधौ।
आत्मदारादिकं सर्वं गुरवे च निवेदयेत्॥"

शिष्य को चाहिये कि लज्जा छोड़ कर दीर्घदण्डाकार में गुरु को प्रणाम करे, और आत्मा, स्त्री और पुत्र प्रभृति सब ही गुरु को सौंप दे।

"शरीरमर्थं प्राणांश्च सद्गुरुभ्यो निवेद्य यः।
गुरुभ्यः शिष्यतो योगं शिष्य इत्यभिधीयते॥"

जो व्यक्ति सद्गुरु को शरीर, अर्थ, प्राण प्रदान करके गुरु शिष्य के सम्बन्ध से सम्बद्ध हो जाते हैं, वे ही यथार्थ शिष्य कहलाते हैं।

"वरं प्राणपरित्यागः शिरश्छेदोऽपि वा भवेत्।
तथापि न परित्यज्यं गुरुवाक्यं कदाचन॥"

यदि प्राण वियोग हो जाय तो वह भी श्रेयः है, यदि मस्तक कट जाय तो वह भी श्रेयः है, तो भी गुरु वाक्य लंघन करना किसी प्रकार भी कर्तव्य नहीं है।

इस कारण शिष्य बनने के लिए देखना होगा कि अपने मन में वास्तविक प्रपन्नावस्था आ गयी है या नहीं। जन्म-मृत्यु, जरा, देख

कर अपने मन में यथार्थ त्रास आ गया है या नहीं। संसार से स्वाद बोध चला गया है या नहीं। वास्तव में पार उतर जाने के लिए अपने मन में व्याकुलता आ गयी है या नहीं। यदि यह न हुआ हो तो हजारों उपदेशों से भी कुछ न होगा, स्वयं व्यास की तरह सद्‌गुरु के आने से भी कुछ न होगा। यदि सच्ची पिपासा पैदा हो चुकी हो, यदि यथार्थ व्याकुलता आ जाय तो उस अवस्था में गुरु की भी कृपा होती है, और शिष्य का भी कल्याण होता है। अश्रु विगलित नेत्रों से शिष्य ने गुरु से कहा—"मैं हूँ दीन, मुझे आश्रय दो, मैं डरा हुआ हूँ, मुझे अभय दो; मैं तुम्हारा शरणागत हूँ, तुम मुझे रक्षा करो।" मन का ऐसा भाव लेकर शिष्य के गुरु के पास आने पर गुरु में शिष्यत्राणकारिणी चित् शक्ति का स्फुरण होता रहता है, गुरु भी अवश होकर शिष्य का मङ्गल साधन करने को तैयार हो जाते हैं। ठीक जैसे बछड़े को देखकर गाय का स्तन क्षरण करने लगता है, सत् शिष्य को देखकर गुरु के हृदय कन्दर से वैसे ही करुणा का उत्स फूट कर निकल पड़ता है। शरीर तो यन्त्र है किंतु गुरु असल में आत्मा है। जल स्रोत जैसे पत्थर के बीच से फूट कर निकल पड़ता है, वैसे ही गुरु कृपा गुरु के शरीर मन से निर्मल झरने के जल की तरह निकल कर संसार तप्त शिष्य के प्राण को सुशीतल कर देता है। यदि कोई देखना जानता हो तो वह देख पाता है कि गुरु के शरीर से विद्युत् की तरह एक शुभ्र उज्ज्वल आलोक-रश्मि शिष्य के समूचे शरीर पर पड़ रही है। यह आलोक-रश्मि ही गुरुशक्ति है, इसी से शिष्य के अज्ञान-तिमिर का उपशम होता है। मैं पहले बतला चुका हूँ कि शिष्य में शरणागत होने का भाव ही उसके कल्याणलाभ का कारण है। अर्जुन ने जब अपने को श्रीकृष्ण के पाद-पद्म में लोट-पोट कर दिया, तभी उनकी करुणा पाने में वे समर्थ हुए। अर्जुन ने कहा था—"मैं प्रपन्न हूँ, मैं शरणागत हूँ, मुझे ज्ञान दो।"—"शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।" उसके बाद जब

अर्जुन का मोह दूर हो गया, आत्म-साक्षात्कार हो गया, हृदय भक्ति-प्रेम से भर उठा, तब विश्वरूप दर्शन करने की इच्छा हृदय में जागने लगी। किन्तु तब भी उन्होंने अपने को उसके लिए अयोग्य ही समझ लिया था। डरते डरते उन्होंने कहा—"मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो। योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययं।" तब अर्जुन के हृदय-सखा भव-नदी के कर्णधार जगद्गुरु श्रीकृष्ण ने कहा—"भय क्या है, तुमको सामर्थ्य न हो, मुझमें सामर्थ्य तो है, मैं तुमको दिव्य चक्षु दे रहा हूँ—"पश्य मे योगमैश्वरम्।" शिष्य के प्रति गुरु की इतनी अधिक दया हुई! इस गुरु को क्या कोई मनुष्य कह सकता है?

शङ्कराचार्य ने शिष्य के लक्षण बताये हैं—"शिष्यस्तु को यो गुरु-भक्त एव।" जो गुरु-भक्त है वही यथार्थ शिष्य है। जिस शिष्य में भक्ति का सम्बल नहीं है, वह गुरु कृपा आकर्षण नहीं कर सकता। गुरु-कृपा यदि न हो, तो शिष्य बनना न बनना दोनों ही समान है।

रामब्रह्म—भाई, तुम्हारी यह बात कैसी मालूम हो रही है। मैं अच्छी तरह समझ न सका। तुम कहते हो कि यदि गुरु कृपा न हो तो, शिष्य बनना न बनना दोनों ही समान है। इस अवस्था में तो शिष्य के लिए भारी आफत है। गुरु यदि मनमौजी हों तो शिष्य कहीं का न रह जायगा। उसका सारा परिश्रम चौपट हो जायगा!

मधु पण्डित—देखो, वही भूल फिर कर रहे हो। याद रखो, गुरु मेरी तरह या तुम्हारी तरह मनुष्य नहीं है! जो लोग देह सम्बन्ध रखते हैं उनको ही क्रोध-अभिमान होता है, वे लोग तो देह सम्बन्ध रखते नहीं हैं, इसलिए उन लोगों को उस प्रकार अभिमान या क्रोध होने की सम्भावना कहाँ हैं? पातञ्जल दर्शन का एक सूत्र तुमको सुनाता हूँ—"क्लेशकर्म्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः।" अविद्यादि क्लेश, धर्माधर्म रूप कर्म,

जाति, आयु, भोग और संस्कार, ये सब जिसमें नहीं हैं, ऐसे पुरुष विशेष को ईश्वर कहते हैं ? जो "महान्त गुरु" हैं वे लोग कुछ-कुछ वैसे ही पुरुष विशेष हैं। इस कारण इतर साधारण संसारासक्त पुरुष की तरह शिष्य के साथ उन लोगों का कोई स्वार्थ सिद्धि का सम्बन्ध नहीं है। अगाध करुणावश ही शिष्य का भवबन्धन मोचन के लिए वे लोग निःस्वार्थभाव से उसका मङ्गल करने की चेष्टा करते हैं। इसलिए वे लोग जहाँ देखते हैं कि, यत्नशील अप्रमादी शिष्य निरन्तर आध्यात्मिक उन्नति के लिए सचेष्ट है, वहाँ वे ही लोग उसकी समस्त बाधाओं को दूर करके उसके गन्तव्य पथ को सुगम बना देते हैं। आजकल के व्यवसायियों की तरह वे लोग अपना शिष्य और पराया शिष्य के कारण भेद भाव नहीं रखते। जिज्ञासु, मुमुक्षु, साधन सम्पन्न, अनलस, परहितकारी, वैराग्यवान् पुरुष मात्र ही उन लोगों के शिष्य हैं, वे लोग सभी पर दया करने को तैयार रहते हैं। ऐसे कृपावानों की भी जो लोग कृपा आकर्षण नहीं कर सकते, उन लोगों को अभागा ही कहना पड़ेगा। इसका अर्थ यह है कि जो लोग नकली ठाट दिखाना चाहते हैं, किन्तु साधना नहीं करते, व्यर्थ के कामों में समय बिताते हैं, जिनके चित्त से संसार वासना चली नहीं गयी है और भगवान् को सर्वापेक्षा प्रार्थनीय वस्तु मानकर जो लोग धारणा भी नहीं कर सके हैं, ऐसा संशयात्मा शिष्य कैसे गुरु कृपा लाभ करने में समर्थ होगा ?

रामब्रह्म—भाई, बहुत ही अच्छी बात तुमने सुना दी। गुरु की इतनी महिमा है यह तो पहले मैंने समझा ही नहीं था। हम लोग अपने आदर्श के अनुसार ही गुरु को समझ रहे थे, इसीलिए गुरु के ऐसे अपार्थिव महीयान् भाव को समझ ही न सके थे। मैं सोचता था गुरु एक दिन शिष्य को मन्त्र दे गये, उसके बाद जो सम्बन्ध रह गया वह लेन-देन का है।

मधु—छिः छिः ! इसी तरह तो हमारा सनातन धर्म नष्ट होता जा रहा है। गुरु शिष्य का क्या यही सम्बन्ध है ! गुरु पिता-माता से भी बड़ा है। जिस गुरु को देखकर या स्मरण करके शिष्य अभय नहीं पाता, उस गुरु में गुरुत्व कुछ नहीं है यह तुम जान लो। शिष्य से गुरु के लेने की बात तो दूर रही, ऐसा दाता और कौन है ? इसीलिए कबीर ने कहा है—"गुरुसम कोई दाता नहिं, याचक शिष्य समान।"

रामब्रह्म—किन्तु भाई, आजकल क्या ऐसा गुरु मिलता है ?

मधु—अवश्य ही दुर्लभ है, इस विषय में सन्देह क्या है ? "चन्दनं न वने वने, मौक्तिकं न गजे गजे।"

रामब्रह्म—ऐसी बात है ! यहीं सारी गड़बड़ी रह गयी। इच्छा करने के साथ ही तो मुझे गुरु मिल न जायंगे। इस कारण मेरे लिए प्रकृत दीक्षा पाना एक तरह आकाश-कुसुम ही तो है ?

मधु—नहीं जी नहीं, तुम जो सोच रहे हो वह बात नहीं है। अच्छा, भगवान् को तुम सर्वान्तर्यामी मानते हो तो ? वे सर्व शक्तिमान हैं यह भी स्वीकार करते हो ?

रामब्रह्म—बहुत ही ठीक ! अवश्य ही करता हूँ ?

मधु—यदि यही बात है तो चिन्ता ही क्यों ? मान लो, तुम्हारे मन में यदि गुरु के लिए बहुत व्याकुलता रहेगी, तो उसको वे अवश्य ही जान सकेंगे, और जब कि वे सर्वशक्तिमान हैं, तब उसकी व्यवस्था भी वे अवश्य ही कर सकेंगे। किन्तु बात क्या है जानते हो। उनके ऊपर निर्भर करना पड़ेगा।

रामब्रह्म—भाई, यही तो करने नहीं आता। सब कुछ कर सकता हूँ, किन्तु उनके ऊपर निर्भर नहीं कर सकता। मन विचलित होता रहता है।

मधु—इसका अर्थ क्या हुआ जानते हो? हम लोग अन्तःकरण के साथ भगवान् पर विश्वास ही नहीं करते, इसलिए उनको चाहेंगे किस तरह? रुपयों को जैसे हम जकड़ रखते हैं, ठीक वैसा भाव भगवान के प्रति नहीं हो पाता, इसीलिए दुःख भी दूर नहीं होता।

रामब्रह्म—यह बात तो ठीक है भाई, किन्तु उपाय क्या है? मन की जो अवस्था है, उसे तो मैंने तुमको सब बता ही दिया है, और तुम भी उसे अच्छी तरह समझ गये हो। अब इस अवस्था का उपाय क्या है बता सकते हो? अर्थात् ईश्वर में सोलह आना मन नहीं है, संसार में ही साढ़े पन्द्रह आना मन है; और यह एक आना या आध आना मान लो, उस तरफ है। इस अवस्था में क्या ऐसा गुरु मिलेगा जिन्हें देखने से सोलह आना विश्वास हो जाय?

मधु—राम राम! यह तुम सोचना भी मत। महापुरुषों का स्वभाव अद्भुत प्रकार का होता है। उन्हें देखने से भक्ति उत्पन्न होना तो दूर की बात रही, बहुधा ठग समझ कर भ्रम हो जायगा।

रामब्रह्म—ठीक कहते हो भाई, यह कोई झूठी बात नहीं है। साधुओं की भावभंगी देखने से तो बहुत समय में उलटी ही धारणा होती है। विचार में आता है कि ये ढोंगी लोग शायद चोरी करने के लिए ही आये हैं। अच्छा ऐसा क्यों होता है बता सकते हो?

मधु—मन मलिन रहने के कारण। एक बात कहता हूँ, सुनो। साक्षात् परमब्रह्म रामचन्द्र को देखकर भी रावण, कुम्भकर्ण या किसी दूसरे राक्षस का कोई परिवर्तन नहीं हुआ; किन्तु रामचन्द्र को देखकर साधु स्वभाव विभीषण का चरित्र और भी विशुद्धतर हो गया। उसके पुत्र तरणीसेन का प्राण भी रामचन्द्र को देखकर रो उठा। किसी ने मानो उसके हृदय में कह दिया "यही है वह आरा-

धना की वस्तु।" विभीषण और तरणी का मन आदि से अन्त तक निर्मल था इसीलिए भगवान् के सम्मुख जाने से वह और भी निर्मल हो गया, उसने ठीक उस प्राण की वस्तु को पहचान लिया। किन्तु अन्य राक्षसों का मन वैसा निर्मल नहीं था, इसीलिए वे लोग देखकर भी न देख सके। यह कैसे हुआ जानते हो ? बहुमूल्य मणि पड़ी हुई है, तुम पहचानते नहीं हो, इसी कारण उसे तुमने ध्यान से नहीं देखा, उसकी चमक तो तुमने जरूर देख ली, किन्तु उसके साथ परिचय न रहने के कारण वह कितनी मूल्यवान है यह बात तुम समझ ही न सके। इस कारण उसको ग्रहण करने की स्पृहा भी बहुत बलवती नहीं हुई। किन्तु जो जौहरी है, वह ठीक पहचानता है, वह देखने के साथ ही "यही तो है" कहकर मणि को उठा लेता है। भगवान् को साक्षात् देख लेने पर भी मलिन मन के कारण उनको ठीक पकड़ा नहीं जाता। सब ही तो मन का खेल है। मन जिसको ग्रहण करता है, उसको ही पा लिया जाता है, केवल वस्तु सामने रहने से क्या होगा ? देखो, श्रीकृष्ण को देखकर अर्जुन, युधिष्ठिर आदि के प्राण जैसे बन जाते थे, दुर्योधन का वैसा कुछ क्या होता था ? मन निर्मल था इसीलिए पुण्यक्षेत्र कुरुक्षेत्र में स्वजनों का वध करने की अनिच्छा अर्जुन को उत्पन्न हुई थी, किन्तु पापचित्तवाले दुर्योधन को किसी तरह का विकार नहीं हुआ। और भी देखो न, श्रीकृष्ण जब मथुरा में गये, तब उनको देखकर वसुदेव देवकी के मन में वात्सल्य रस का संचार हुआ था, मुनि ऋषि लोगों ने उनको अपना "गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणं" के रूप में समझ लिया था, उद्धवादि भक्त-गण उनको देखकर अपने जीवनवल्लभ हृदय सखा के रूप में समझ सके थे, भक्तिमती मथुरावासिनी स्त्रियाँ उनको अपना प्रियजन समझ कर आनन्दित हुई थीं। और कंस ने देखकर सोचा, मानो कराल काल साक्षात् मूर्तिधारण करके उनके पास आ पहुँचा है। अर्थात् जिसका मन जैसा होता है, परमात्मा की छाया उसके मन में ठीक वैसी ही

पड़ती है। वे ही तो सब हैं। शत्रु कहो, मित्र कहो, आत्मीय कहो, प्रियजन कहो, सब ही तो उसी एक की महिमा है।

रामब्रह्म—यह तो ठीक है। हम लोगों का मन तो मलिन है जरूर, किन्तु इस मलिन मन को सुधार लेने का कोई उपाय है क्या? यदि हो तो बताओ।

मधु—है, किन्तु इस तरह धीमी चाल से चलने से तो काम न चलेगा, आराम ढूँढने से भी न होगा। ठीक तरीके से मिहनत करनी पड़ेगी। सकोगे?

रामब्रह्म—भली भाँति, मैं तुम्हारी सभी बातों में राजी हूँ।

मधु—यही है दुर्लक्षण; इसका अर्थ है तुम कुछ भी न करोगे।

रामब्रह्म—नहीं भैया, मैं तुमसे सच कहता हूँ, मेरी बात पर तुम विश्वास करो।

मधु—अच्छी बात है, सुनो। दुर्भाग्यवश यदि वैसा गुरु नहीं भी मिले, तो भी एक उपाय करना ही पड़ेगा। वह इस तरह है—प्रथम बात यह है कि, जहाँ सत् विषयों की चर्चा होती हो, वहाँ जाकर उन सबको सुनो। दूसरी बात है कि सद्ग्रन्थ पढ़ो। तीसरी बात है—शास्त्र में जो पढ़ो या सुनो, वह यदि तुम्हारे मन के साथ मेल न खाय तो, उस अवस्था में भी उन सबको रसातल में फेंक देने के लिए नाच मत उठो। बहुत-सी बातें ऐसी हैं जो सहज में समझ में नहीं आतीं, किन्तु समझा देने से समझ में आ जाती हैं। फिर ऐसे अनेक विषय हैं, जिन्हें समझा देने पर भी, वे समझ में नहीं आते। वे समय की अपेक्षा करते हैं—साधन करते-करते दीर्घ-काल की साधना के फल से अपने में आप ही उनका अनुभव होता रहेगा। इस कारण धैर्य अवलम्बन करके श्रद्धा-बुद्धि को कुछ बढ़ा देना होगा। उसके बाद लोगों का थोड़ा-थोड़ा उपकार करने की चेष्टा करने, स्वार्थपरता को कम करने, जघन्य इन्द्रिय वृत्तियों को नियमित

करने की तरफ लक्ष्य रखना होगा। उसके बाद कुचिन्ता, दुश्चिन्ता, कुकर्म इत्यादि की तरफ मन जाने पर भी उसको लौटा लाने की चेष्टा करनी चाहिये और निर्जन स्थान में कुछ समय आत्मचिन्तन में लगाना चाहिये। खाने-पीने की चीजें कुछ कम राजसिक हों और बीच-बीच में सात्त्विक हों,—दिवानिद्रा और निरर्थक बातों में समय नष्ट न हो,—इन बातों पर विशेष लक्ष्य रखना होगा। ये ही बातें हैं अध्यात्म मार्ग की सूचना या भूमिका। उसके बाद एक दिन शुभ दिन देखकर कुल की प्रथा के अनुसार मन्त्र ले लो।

रामब्रह्म—क्या? कुल प्रथा के अनुसार मन्त्र लेने से ही काम चलेगा।

मधु—चलेगा नहीं तो क्या होगा? कुलध्वंसकों से मन्त्र लेना पड़ेगा क्या?

रामब्रह्म—मैं सोच रहा था, तुम वर्तमान गुरुगिरी के व्यवसाय के ऊपर बिगड़े हुए हो, उन लोगों से मन्त्र लेने का निषेध करते हो।

मधु—वाह, मैं काला पहाड़ हूँ क्या, कि किसी देवता की मूर्ति देखकर उसे तोड़-फोड़ डालूँगा। ऐसी बात नहीं है, ऐसी बात नहीं है। कुल परम्परा से जो बातें चली आ रही हैं, उनको अवश्य ही करना पड़ेगा? किन्तु उसके बाद भी और है, उस सम्बन्ध में मैंने उस दिन बताया था, और बाद को और भी बताऊँगा। फिर भी मैं वर्तमान समय के भुइंफोड़, सब बातों के जानकार सिद्ध पुरुषों को कुछ आशङ्का की दृष्टि से देखता हूँ। क्योंकि, देश का, दस आदमियों का और धर्म का नाश और अन्तिम श्राद्ध ये ही लोग करेंगे। और दुर्बल चित्त, अशिक्षित, धर्म विश्वासहीन लोभी गुरुओं पर मेरी श्रद्धा नहीं है। उन लोगों से दीक्षा न लेनी चाहिये। तो भी मेरा दृढ़ विश्वास है अब भी गुरुवंश में दो-चार भले आदमी नहीं मिलते ऐसी बात नहीं है। निष्ठावान्, विद्वान् और साधु स्वभाववाले

मनुष्य देखने से ही गुरु बनाना चाहिये। बिलकुल मिले ही नहीं तो, अपना कुल मन्त्र, माता या किसी दूसरे श्रेष्ठ व्यक्ति से लेने से भी काम चल जाता है।

रामब्रह्म—अच्छा कुलगुरु या किसी गुरुजन से मन्त्र लेने से तुम्हारे पूर्व कथित गुरु तत्त्व के साथ मेल बैठेगा कैसे ?

मधु—उसको मैं समझा देता हूँ।

रामब्रह्म—समझा देना तुम्हारा एक बहुत बड़ा गुण है देखता हूँ। जो पूछता हूँ, उसको ही तो तुम समझा देते हो, किन्तु समझत कौन है ?

मधु—अच्छा तुम चेष्टा क्यों नहीं करते, तुम्हारा मस्तिष्क वज्र तो नहीं है कि, कोई भी बात उसको भेद न कर सके।

रामब्रह्म—सम्भवतः ऐसी बात नहीं है। तुम एक बार चेष्टा करके देखो, यह सन्देह भी मिट जाय।

मधु—बात यह है कि, गुरु जिनको ही क्यों न बनाओ उससे हानि नहीं है, यदि गुरु पर भक्ति रहे। पहले ही मैंने कहा है यह शरीर तो गुरु नहीं है। इस कारण जिस किसी भी शरीर का आश्रय करके गुरु केन्द्र प्रकट क्यों न हो जाय, वे ही अन्तर्यामी आत्मा सभी गुरु केन्द्रों के मध्य विन्दु होकर विराजते हैं। गुरु जैसा ही क्यों न हो, उसमें जो यथार्थ गुरु हैं वे शिष्य का कल्याण विधान अवश्य ही करते हैं। जैसे प्रतिमा में देवता की कल्पना करनी पड़ती है, वैसे भगवान का करुणामयत्त्व और नियन्तृत्व भाव गुरु में देखना पड़ता है। अन्तर्यामी रूप में वे सब गुरु हृदयों में ही तो विराज रहे हैं ? इस कारण जैसे-जैसे अधिकार होगा, वैसे-वैसे गुरु केन्द्र का प्रकाश होता रहेगा। असल में वे ही सभी के गुरु हैं। इसीलिए देखो, भिन्न भिन्न लोगों के गुरु भिन्न भिन्न होने पर भी, गुरु का ध्यान, उनकी मूर्ति और मूल मन्त्र सभी का एक है। असल बात

यह है, तुम्हारी जितनी योग्यता होगी, ठीक तदनुरूप गुरु केन्द्र का प्रकाश होगा। तुम पढ़ रहे हो इसी कारण प्रथम भाग बिलकुल ही न पढ़ कर वेदान्त शास्त्र का अध्ययन कर सकोगे ऐसा खयाल मत करना। उन पोथियों को यदि कोई तुम्हारी गरदन पर लाद भी दे तो उससे तुम्हारा ज्ञान प्रथम भाग की अपेक्षा एक विन्दु भी न बढ़ेगा, केवल गरदन ही पुस्तकों के बोझ से टेढ़ी हो जायगी। जिस प्रकार एक ही लड़के का शरीर और मन आयु की अवस्था के भेदानुसार भिन्न रूप धारण करता है, ठीक उसी प्रकार एक ही गुरु शिष्य के अधिकारानुसार विभिन्न रूपों से प्रकाश पाते हैं। किन्तु शिष्य की अवस्था के भेदानुसार उनके प्रकाश की भिन्नता रहने पर भी स्वरूपतः सभी गुरुओं में वे ही एक अन्तर्यामी गुरु हैं। माँ जैसे लड़के की उम्र के भेदानुसार भिन्न भिन्न खाद्य की व्यवस्था कर देती हैं, किन्तु माँ वही एक ही रहती हैं, वैसे शिष्य की योग्यता के अनुसार विभिन्न गुरु केन्द्रों का प्रकाश होता है, किन्तु गुरु वही एक ही रहते हैं।

रामब्रह्म—इस अवस्था में तो शिष्य की जैसे जैसे योग्यता बढ़ती जायगी, वैसे वैसे ही गुरु को बदलना पड़ेगा ? इस प्रकार अदला बदला कितनी बार करना पड़ेगा ?

मधु—बहुत बार नहीं, तीन बार, जिनसे तुमको गायत्री मन्त्र की दीक्षा मिली है वे हैं प्रथम गुरु, जिन्होंने तुमको बता दिया कि तुम ब्रह्मविद्या के अधिकारी हो। जगत् के साथ तुम्हारा और तुम्हारे साथ ब्रह्म का जो सम्बन्ध है, उसे उन्होंने प्रकाश में लाकर तुम्हारा अज्ञानान्धकार दूर कर दिया, वे ही हुए प्रथम गुरु। हमारे देश के प्रथमतः मन्त्रदाता गुरु लोग भी इसी प्रथम श्रेणी के गुरु के अन्तर्गत हैं। गायत्री दीक्षा ही ब्राह्मण के लिए प्रशस्त और यथेष्ट है। किन्तु कुलप्रथानुसार मन्त्रग्रहण करना भी अच्छा है। उपनयन के समय दीक्षा-कार्य ठीक रूप से नहीं होता इसी कारण आज कल

तान्त्रिक दीक्षा की आवश्यकता आ पड़ी है। ये मेरी प्रकृति का विचार करके मेरे शरीर और मन के अनुकुल बीज, मूर्ति, आसन, प्राणायाम, ध्यान और पूजा सिखा देते हैं। इससे शरीर-मन निर्मल और पवित्र होता है और यथार्थ दीक्षालाभ के उपयुक्त हो जाता है। उसके बाद जब शरीर शुद्ध हो जाता है, जब मन निर्मल हो जाता है, सत्त्वगुण बढ़ता रहता है, भगवद् लाभ की व्याकुलता समस्त मनप्राण को तदभिमुखी करने के लिए आकुल आग्रह प्रकट करती रहती है, आत्मदर्शन और आत्मज्ञान के लिए चित्त लालायित हो उठता है, तब उस शुभ मुहूर्त्त में "महान्त सद्गुरु" आकर दर्शन देते हैं। उनका दर्शनलाभ प्रायः ईश्वर-दर्शनलाभ के समान है। वे कृपा करके जिस दिन समूचा भ्रम मिटाकर, मेरे ज्ञान के समक्ष दिव्यलोक को प्रकाशित कर देते हैं, उस दिन मेरा सब सन्देह, हृदय की सभी धड़कने मिट जाती हैं। उसके बाद अवशभाव से उनके आदर्श मार्ग से चलते-चलते अपने में चैत्यगुरु का प्रकाश हो जाता है। तब अन्धकार दूर हो जाता है, ज्ञान-सूर्य का उदय होता है। भक्तसाधक देखते हैं—"तू तू करते तू भया तुझमें रहा समाय, अर्थात् "तुम तुम" करते करते "मैं" "तुम" हो गया, और "तुम" में "मैं" डूब गया। तब "तुम" "मैं", सब मिट गया और एक अखण्ड चिद्घन आनन्द प्रकाश पाने लगा। यही है द्रष्टा का स्वस्वरूप में अवस्थान। यह अवस्था है "निजबोधरूपम्।" किसी को समझाया नहीं जा सकता; गूँगे के मिठाई खाने की तरह, प्रकाश करने की शक्ति नहीं है। जो व्यक्ति उस अपार आनन्द-सिन्धु "शुद्ध ज्ञानैक रूपम्" परमब्रह्म को जान लेना चाहेगा, वह भी उनमें प्रवेश करके ब्रह्म स्वरूप हो जायगा। नदी जिस प्रकार समुद्र में आत्म-विसर्जन करके समुद्र के साथ अभिन्नाकारा हो जाती है, उसी प्रकार जो उनके स्वरूप समुद्र में एक बार प्रवेश करता है, वह चिरदिन के लिए उनमें आत्मविसर्जन कर

देता है और कभी उठकर आ नहीं सकता। अच्छा, आज यहीं तक रहने दो।

—०❀०—

चतुर्थ अध्याय

अधिकार

सभी लोगों का अधिकार एक प्रकार का नहीं है। हिन्दू धर्म की यही एक मौलिक बात है। इस अधिकार-तत्त्व को भली भाँति समझना चाहिये। अधिकार विचार जितना ही धीरे-धीरे घटता जा रहा है, हम लोग भी उसी परिमाण में सफलता से वञ्चित होते जा रहे हैं। पाश्चात्य शिक्षाभिमानी, ज्ञान-विज्ञान में पारदर्शी आजकल के अनेक लोगों ने कहना सीख लिया है कि, सभी विषयों में सब का अधिकार न रहना अन्याय है, और यह है सम्भवतः हमारे समाज का बहुत बड़ा एक कलङ्क।

साधारण लोग कहना चाहें तो कहें, किन्तु जब कि अनेक बुद्धिमानों की बुद्धि में भी यह एक सन्देह जाग उठता है, तब इस विषय की आलोचना आवश्यक है।

अधिकार का अर्थ है योग्यता। योग्यता सबकी सभी बातों में रहती है ऐसा तो दिखाई नहीं पड़ता। कोई-कोई असाधारण पुरुष हैं, जिनकी योग्यता प्रायः सभी विषयों में दिखाई पड़ती है। किन्तु इस श्रेणी के लोगों की संख्या अत्यन्त कम है, मुट्ठी भर कहें तो ठीक है। इसी कारण ये लोग असाधारण पुरुष के नाम से प्रसिद्ध हैं। किन्तु जो लोग साधारण मनुष्य हैं; उनमें दो-एक

विषयों की योग्यता दिखाई पड़ती है। फिर ये योग्यताएँ भी एक प्रकार की नहीं हैं। किसी की तो अंक शास्त्र में योग्यता है, किसी को दर्शन अध्यापन में योग्यता है, किसी को इतिहास में, किसी को शिल्प में, किसी को चिकित्सा में, किसी को गो-रक्षण में, किसी को वाणिज्य में किसी को दास्य में इत्यादि। किन्तु जिसकी योग्यता गो-रक्षण में है, हम लोग उससे क्या सुचिकित्सा की आशा करते हैं? या जिसकी योग्यता दर्शनशास्त्र में है, हम क्या उसके सिर पर गट्ठर लादने जाते हैं? यदि हम लोग उनसे एक कुली का काम लेने की आशा करें, तो क्या हम लोगों को निराश होने की सम्भावना नहीं है? इस प्रकार एक व्यक्ति चिरदिन दास्यवृत्ति अवलम्बन करके ही जीवन-यात्रा निर्वाह करता है, और इस विषय में सम्भवतः उसकी यथेष्ट योग्यता भी रह सकती है, किन्तु उसकी यह योग्यता है इसीलिए उसको चित्रशाला में अध्यक्षपद पर नियुक्त किया जाय, यह कहने से क्या बुद्धिमान का कार्य करना होगा या यह समदर्शिता की बात होगी, इस कारण इसकी विशेष प्रशंसा करनी पड़ेगी? आशा है, कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति समदर्शिता का स्वरूप सुरक्षित रखने को तत्पर होकर ऐसे असम्भव काम को सम्भव करने की चेष्टा न करेंगे। इसलिए देखा जाता है, योग्यता के अनुसार ही अधिकार की भिन्नता दिखाई पड़ती है। इस अधिकार को अस्वीकार करने का उपाय नहीं है। यही यदि होगा तो मनुष्य के क्रम विकाश की तरफ भी इस तत्त्व को अस्वीकार करने से काम चलेगा क्यों?

आम के पेड़ पर आम फलता है, जामुन नहीं फलता, इससे हम लोग दुःखित नहीं हैं। रबी की फसलें फागुन चैत में पक जाती हैं उसके लिए भी हम लोग कोई प्रश्न नहीं करते। नदी की बालू में धान पैदा नहीं होता, किन्तु अन्य फसलें

खीरा, तरबूज शायद पैदा होते हैं, इसके लिए भी हम लोग अधैर्य नहीं दिखाते। किन्तु मनुष्य और मनुष्यत्व का विकास भी इसी नियम के अधीन है, इस बातको स्वीकार करने में ही हमारे मन-प्राण व्यथित हो उठते हैं। क्यों ऐसा होता है! यह क्या अधैर्य्य का चिह्न नहीं है ? जैसे कोई कोई चञ्चल व्यक्ति किसी भी बात के लिए विलम्ब सहन नहीं कर सकते, प्रतीक्षा नहीं कर सकते ये लोग भी उसी प्रकार क्रम विकाश के लिए समय विताने के इच्छुक नहीं हैं। समय होने के पहले ही ये लोग फूट उठना चाहते हैं। इसको कभी स्वाभाविक अवस्था नहीं कहा जा सकता। बहुत से फलों को असमय में पका देने से या बलपूर्वक पका देने से वे पक जाते हैं जरूर, किन्तु स्वाभाविक अवस्था में पकने से जैसे सुन्दर और सुस्वादु होते, असमय की चेष्टा से कभी उनमें वैसे रस का आविर्भाव सम्भव नहीं होता। अवैध उपायों से फल पकना तो दूर रहा, वे गिर जाते हैं। जब मनुष्य अस्वाभाविकता के कारण क्रम विकाश के लिए प्रतीक्षा नहीं कर सकता, जब वह मोह में पड़ जाने के कारण बलपूर्वक फूट जाना चाहता है, तब वह फूट जाता है अवश्य, किन्तु मुरझा जाता है अर्थात् वह फिर किसी काम में नहीं लगता। देवता या मनुष्य किसी के भोग में नहीं लगता।

हम लोगों के दुर्भाग्यवश ऐसे अनेक मनुष्य-फल इस अस्वाभाविक विकास के फल स्वरूप दुनियाँ के किसी काम में ही नहीं लग सके हैं। और जिस तरह असमय में ही वे उदित हुए थे, उसी तरह असमय में ही ध्वंस हो गये हैं। मनुष्यों में भी इस क्रम विकास की पद्धति को अस्वीकार करने से काम न चलेगा। अस्वीकार करने से असमय में ही ध्वंस प्राप्त होना पड़ेगा।

ब्रह्मज्ञान का भी उसी तरह एक अधिकार है। यों ही जब तब मन में सोच लेने से ही यह जिस किसी को न मिल जायगा। इसका भी एक समय है, इसका भी एक योग्य अधिकारी है। ब्रह्मज्ञान लाभ करना तो दूर रहे, ब्रह्म जिज्ञासा करने का अधिकार सबको नहीं है, इसीलिए तत्त्वदर्शी त्रिकालज्ञ महर्षि व्यासने "अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" सूत्र की अवतारणा की थी। असमय में या कुक्षेत्र में बीज बो देने से जिस प्रकार उसमें फसल होने की सम्भावना नहीं रहती, उसी प्रकार जिनको ब्रह्मज्ञान पाने की योग्यता प्राप्त नहीं हुई है, वे यदि ब्रह्म जिज्ञासा करते हैं, तो कभी उनमें ब्रह्मज्ञान का उदय नहीं होगा।

विहित ब्रह्मचर्यादि का अनुष्ठान करने से जिन्होंने "ब्रह्मवर्चस" प्राप्त किया है, जिन्होंने शमदमादि षट् सम्पत्तियों पर अधिकार प्राप्त कर लिया है, जिनके शरीर में बल है, तो भी मन में विकार नहीं होता, ऐसे वीर्य सम्पन्न पुरुष ही ब्रह्मजिज्ञासा के अधिकारी हैं। इन सभी गुणावलियों का प्रकृत क्षेत्र है विप्र का शरीर। क्योंकि स्वाभाविक उपाय से ही इन सब गुणों में वे लोग अधिकारी हुए हैं। यह भी क्रम विकास का फल है। जिसने ब्राह्मण का शरीर प्राप्त किया है, समझना होगा कि उसमें एक स्वाभाविक योग्यता मौजूद है। फिर वे यदि तपस्वी हों, जितेन्द्रिय और मुमुक्षु हों, तब तो कोई बात ही नहीं है। जिनका ब्राह्मण शरीर नहीं है, फिर भी जो तपस्वी और मुमुक्षु हैं, तो समझना होगा कि, उनमें बीज ठीक गिरा है, किन्तु क्षेत्र उपयुक्त नहीं है। इस कारण उपयुक्त क्षेत्र में जो फल लाभ होता वैसे फल लाभ की उसमें सम्भावना नहीं है।

यह अविचार नहीं है, पक्षपात करना नहीं है—जिस क्षेत्र में धान पैदा होता है उसी क्षेत्र में तो धान होगा।

पटुआ जिस तरह की चीज है, उसका खेत उस प्रकार का होता है, तुम यदि बलपूर्वक उसमें चना बोओगे तो उसमें बिलकुल ही चना न पैदा होगा ऐसी बात नहीं है; किन्तु चने के खेत में स्वभावतः चना जैसा हो सकता था, उस तरह बिलकुल ही न होगा। सभी जमीन में ईख पैदा नहीं होती, तुम यदि बलपूर्वक बिना विचार के सभी खेतों में ईख रोप दोगे तो देखोगे सभी खेतों में समान फसल न होगी। खूब चेष्टा करने से भी न होगी। यदि होगी तो किसी खेत में खूब पुष्ट सुन्दर रस युक्त होगी, और अयोग्य खेत की ईख पतली पतली, छोटी छोटी टहनियों की तरह होकर अपने खेतों की अयोग्यता ही प्रमाणित करेगी।

इसी कारण अधिकार को लेकर हिन्दू शास्त्र में इतनी मारा मारी होती रहती है। अधिकार न मानने से हिन्दुत्त्व की जड़ में ही आघात करना होता है, आजकल किसी काम में ही कोई किसी तरह का फल नहीं पा रहे हैं। "स्व स्व कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।" स्व स्व प्रकृतिगत, जातिगत कर्मों में नियुक्त रहने से उन उन कर्मों में कर्म करने वालों का सफलता लाभ अत्यन्त स्वाभाविक है। इस बात को न मानने से जो फल मिलता है, आजकल के बातों के ही ब्रह्मज्ञानी लोग उसके एक उज्ज्वल प्रमाण हैं। जहाँ ब्रह्मज्ञान स्वाभाविक रूप में उदय नहीं हुआ है, केवल पोथी पढ़ने से हुआ है, उस ज्ञान में तो उसका अधिकार नहीं है। इसलिए देखा जाता है कि, मौखिक ब्रह्मवादियों को पग पग पर ठोकर खाना पड़ रहा है, उनका स्वरूप पकड़ में आ रहा है, किन्तु जिन्होंने सचमुच ही ब्रह्मज्ञान लाभ किया है, उनको इस तरह ठोकर खाना नहीं पड़ता और पग पग पर असमर्थता प्रकट हो जाने के भय से झूठे दिखावे का आश्रय नहीं लेना पड़ता। शूद्र यदि ब्रह्म-

ज्ञानी होना चाहे तो उसका शरीर ही उसको जबर्दस्त बाधा देगा। फिर अविमिश्र ब्रह्मचर्य न रहने पर भी केवल विप्र शरीर में भी उसकी विशेष कोई सुविधा न होगी। हम लोग अयोग्य हैं इसी कारण आजकल ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मविद्या की जितनी भरमार हो रही है, उतना ही हमारा मस्तिष्क विकृत होता जा रहा है और अहंकार अधिकतर बढ़ता जा रहा है। ब्रह्मज्ञान का आस्फालन बढ़ रहा है, किन्तु ब्रह्मविद्या का एक शब्द भी मस्तिष्क में नहीं समा रहा है, ऐसा ही भाग्य का परिहास है !

रामब्रह्म—इससे तो भाई, तुमने बहुत ही फेर में डाल दिया। मैंने सोचा था शरीर ब्राह्मण का हो तो काम सिद्ध हो सकता है, उसी में से तुमने एक और शाखा निकाल दी, इस से तो फिर निराश होना पड़ता है।

मधु—शाखा फिर क्या हो गयी ?

रामब्रह्म—यही जो तुमने कहा, ब्राह्मण का शरीर होने से भी न होगा उसमें बीज की योग्यता रहनी चाहिये। तो भाई वह है या नहीं किस तरह बताऊँ ?

मधु—जो भी हो चेष्टा करने से हानि ही क्या है ? चेष्टा करने से ही जिसकी जितनी योग्यता है वह पकड़ में आ जायगी। इसलिए योग्यता के अनुसार पुरुषकार की सहायता से जितना होना होगा उतना होगा। गुरु के सामने शिष्य की योग्यता पकड़ में आते देर नहीं लगती। फिर भी शरणागत प्रपन्न शिष्य को गुरु लोग नहीं छोड़ते। चेष्टा द्वारा उसको योग्य बना लेते हैं। सम्भवतः इस योग्यता को प्राप्त करने में दो-एक जन्म बीत ही जायंगे।

रामब्रह्म—क्या ही सर्वनाश ! तो क्या इस जन्म में न होगा ?

मधु—इतना अधैर्य होने से क्या काम चलता है भैया ? पहले ही तो मैंने तुमको बता दिया है, इन सब बिषयों में खूब धीरज चाहिये। पुरुषकार और धैर्य के एक साथ सम्मिलित हो जाने से सफलता

प्राप्ति अनिवाय है। किन्तु दो-तीन जन्मों की बात जो मैंने कही है, उसको अधिक मत समझना। हम लोग इतने अयोग्य हैं कि, हमें अपनी सभी त्रुटियों का संशोधन करने में खूब पौरुषशाली पुरुष को भी दो-तीन जन्म बिता देने पड़ेंगे।

रामब्रह्म—फिर जन्म ग्रहण करने से अशुभ की तरफ भी तो चेष्टा हो सकती है ? तब ?

मधु—नहीं, ऐसी बात बहुत नहीं होती—

"नहि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति।"

रामब्रह्म—अच्छा भैया। तुमने कहा कि गुरु के सामने शिष्य की योग्यता पकड़ में आ जाती है, यह कैसे ?

मधु—यह कठिन क्या है ? तुमने कभी रसोई बनाकर भोजन किया है ? तो एक चीज को तुमने अवश्य ही लक्ष्य किया होगा। हम लोग ईंधन की जो लकड़ी देखते हैं, वह एक ही प्रकार की नहीं होती। कोई ईंधन सहज में ही जलता है, साथ ही सहज में बुझता नहीं। यही उत्तम लकड़ी है। मनुष्यों में ऐसे ही अधिकारी श्रेष्ठ अधिकारी हैं।

और एक प्रकार का ईंधन है, उसके जलने में कुछ देर लगती है, किन्तु एक बार जल जाने पर खूब जलता है, बुझना नहीं जानता। यह है मध्यम श्रेणी का। मनुष्यों में भी इस प्रकार मध्यम अधिकारी देखा जाता है। प्रारम्भ में उसको कुछ कष्ट उठाना पड़ता है, किन्तु एक बार लग जाने से फिर छोड़ता नहीं हैं।

तीसरे प्रकार के ईंधन की लकड़ी कैसी होती है जानते हो ? आग जला दो, खूब पकड़ लेगी, जरा सा ध्यान हटा लो फिर उसी क्षण बुझ जायगी। इसलिए इस तरह की लकड़ी जलाने में लगातार फूँकते रहना पड़ता है, नहीं तो किसी तरह भी काम पूरा नहीं होता। खूब आग जल रही है किन्तु निश्चिन्त होने का उपाय

नहीं है, जरा हवा झलना बन्द कर देते हो कि बुझ जाना शुरू हो जाता है। ऐसी लकड़ी से रसोई बनाने वाले को बहुत ही कष्ट होता है। इस श्रेणी के अधिकारियों को लेकर गुरुओं को बड़ी विपद होती है। बहुत आशा भी मिलती है इसलिए छोड़ देने की भी इच्छा नहीं होती, किन्तु लगातार नजर न रखने से भी नहीं होता। समस्त जीवन ही इन लोगों का इसी प्रकार चलता है। देखोगे कि मनोयोग शिथिल होने से फिर रक्षा नहीं है। तुरन्त ही दस हाथ नीचे उतर गये हैं; इसलिए इन लोगों को लेकर अनवरत पंखे से हवा झलनी पड़ती है; फूँकते-फूँकते, पसीने से लथ-पथ हो जाना पड़ता है। किन्तु आग पकड़ सकती है इतनी योग्यता इन लोगों में है।

चौथी श्रेणी की लकड़ी भीगी, जल से तर होती है। जितना ही पंखा झलो, जितना ही फूँकते रहो; किसी तरह भी न जलेगी। मनुष्यों में भी इस श्रेणी के लोग हैं। हजार बार फूंकने से भी कुछ होने वाला नहीं है। ये ऐसे भीगे होते हैं कि किसी तरह भी इनमें आग जलना नहीं चाहती। किन्तु इतना फल होता है कि आग के साथ योग रखने से काल-क्रम से इसमें से जलीय अंश सूख जा सकता है। जो हो, किसी समय कुछ बन जाने का भरोसा रहता है।

रामब्रह्म—भाई, मेरी अवस्था कुछ अंशों में इसी चतुर्थ श्रेणी की है, यह बात अवश्य ही समझ सकते हो। अब फूँकने वाला कोई मनुष्य मिल जाने से ही काम बन जायगा। जाने दो, क्रमशः जल का अंश निकल जाने पर कुछ-कुछ सूखा हो जाना भी परम भाग्य की बात मानी जा सकती है। अच्छा आज समाप्त करो; फिर कभी बातचीत चलेगी। मैं सहज में तुमको न छोड़ूँगा। देखो, भाई फूँकने के डर से मुझे छोड़ मत देना।

———

परिशिष्ट

गुरु का ध्यान

प्रातः शिरसि शुक्लाब्जे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम् ।
वराभयकरं शान्तं स्मरेत् तन्नामपूर्वकम् ॥
हृद्यम्बुजे कर्णिकामध्यसंस्थं ।
सिंहासने संस्थितदिव्यमूर्तिम् ।:
ध्यायेद् गुरुं चन्द्रकलावतंसं ।
सच्चित्-सुखाभीष्टवरप्रदानम् ॥
श्वेताम्बरं श्वेत विलेपयुक्तं ।
मुक्ताफलाभूषित दिव्यमूर्त्तिम् ॥
वामाङ्कपीठे स्थितदिव्यशक्तिम् ।
मन्दस्मितं पूर्णकृपानिधानम् ॥
आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं ।
ज्ञानस्वरूपं निजबोधयुक्तं ॥
योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं ।
श्रीमद्गुरुं नित्यमहं भजामि ॥
ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्त्तिं
द्वंद्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ॥
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वदा साक्षिभूतं ।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥

—:o❀o:—

दक्षिणामूर्त्ति स्तोत्र

वट विटप समीपे भूमिभागे निषण्णं
सकल मुनिजनानां ज्ञानदातारमारात् ।
त्रिभुवनगुरुमीशं दक्षिणामूर्त्तिदेवं
जननमरणदुःखच्छेद दक्षं नमामि ॥
चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्यागुरुर्युवा
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः ॥
ॐ नमः प्रणवार्थाय शुद्धज्ञानैकमूर्त्तये ।
निर्मलाय प्रशान्ताय दक्षिणामूर्त्तयेनमः ॥
निधये सर्वविद्यानां भिषजे भवरोगिनाम् ।
गुरवे सर्वलोकानां दक्षिणमूर्त्तये नमः ॥
मौनव्याख्या-प्रकटित परब्रह्मतत्त्वं युवानं ।
वर्षिष्ठान्तेवसदृषिगणैरावृतं ब्रह्मनिष्ठैः ।
आचार्येन्द्रं करकलितचिन्मुद्रमानान्दरूपं
स्वात्मारामं मुदितवदनं दक्षिणामूर्तिमीड़े ॥
मन्त्रः सत्यं पूजा सत्यं सत्यं देवोनिरञ्जनः ।
गुरोर्वाक्यं सदा सत्यं सत्यमेव परं पदं ॥
यं ध्यायन्ति बुधाः समाधिसमये शुद्धं वियत्सन्निभं
नित्यानन्दमयं प्रसन्नममलं सर्वेश्वरं निर्गुणम् ।
व्यक्ताव्यक्तपरं प्रपञ्चरहितं ध्यानैकगम्यं विभुं ।
तं संसारविनाशहेतुमजरं वन्दे गुरुं मुक्तिदम् ॥



गुरुमाहात्म्य

गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो गुरुर्गतिः ।
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौरुष्टे न कश्चन ॥
एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत् ।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्त्वाः सोऽनृणोभवेत् ॥
गुरौ सन्निहिते यस्तु पूजयेदन्ययन्त्रके ।
स दुर्गतिमवाप्नोति पूजा च विफला भवेत् ॥
शरीरदः पिता देवि ज्ञानदो गुरुरेव च ।
गुरोर्गुरुतरो नास्ति संसारे दुःखसागरे ॥
नरबुद्धिं वर्णबुद्धिं गुरौच गुरुमन्त्रके ।
कदाचिन्नैव कुर्वीत कृते तु नरकं व्रजेत् ॥
काशीक्षेत्रं निवासोऽस्य जाह्नवी चरणोदकम् ।
गुरुर्विश्वेश्वरः साक्षात् तारकं ब्रह्मनिश्चितम् ॥
सर्वपापविशुद्धात्मा श्रीगुरोः पादसेवनात् ।
सर्वतीर्थावगाहानां फलं प्राप्नोति निश्चितं ॥
गुरौ मनुष्यता बुद्धिः शिष्याणां यदि जायते ।
नहि तस्य भवेत सिद्धिः कल्प कोटिशतैरपि ॥
मुनिभिः पन्नगैर्वापि सुरैर्वा शापितो यदि ।
कालमृत्युभयाद्वापि गुरुरक्षति पार्वति ॥
अशक्ता हि सुराः सर्वे अशक्ता मुनयस्तथा ।
गुरुशापहताः क्षीणाः क्षयं यान्ति न संशयः ॥

—:०❀०:—

गुरु नमस्कार

संसार वृक्षमारूढ़ाः पतन्ति नरकार्णवे ।
येनोद्धृतमिदं विश्वं तस्मै श्रीगुरवेनमः ॥
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवेनमः ॥
स्थावरं जङ्गमं व्याप्तं यत्किंचित् सचराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवेनमः ॥
चिन्मयं व्यापितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
सर्वश्रुतिशिरोरत्नविराजित पदाम्बुजम् ।
वेदान्ताम्बुजसूर्याय तस्मै श्रीगुरवेनमः ॥
चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरञ्जनं ।
विन्दुनादकलातीतं तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
शोधनं भवसिन्धोश्च ज्ञापनं सारसम्पदाम् ।
गुरोःपादोदकं सम्यक् तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं परमात्मस्वरूपकं ।
स्थावरं जङ्गमञ्चैव प्रणमामि जगन्मयं ॥
वन्देऽहं सच्चिदानन्दं मायातीतं जगद्गुरुं ।
नित्यं पूर्णं निराकारं निर्गुणं सर्वसंस्थितम् ॥
परातपरं परं ध्येयं नित्यमानन्दकारकम् ।
हृदयाकाशमध्यस्थं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ॥

समाप्त

ग्रन्थकार रचित अन्य पुस्तकें :—

१—विल्व दल		मूल्य ३)
२—अभ्यास योग	(सजिल्द)	मूल्य २।)
अभ्यास योग	(अजिल्द)	मूल्य १।।)
३—दिनचर्या	(अजिल्द)	मूल्य १।।=)
४—दीक्षा और गुरुतत्व	(अजिल्द)	मूल्य ।।।)

कवि सम्राट स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर की दिनचर्या और अभ्यास योग के प्रति सम्मति—

"'दिनचर्या' पढ़ कर उत्साह और उपकार मिला। यह पुस्तक बहुत काम की हुई है।"

"मेरे प्रवास में 'अभ्यास योग' ने मित्र रूप में दर्शन दिया। इसमें हमारे देश की साधना ने मेरा साथ दिया है जिसपर मेरा अनुराग है।"

—:o❀o:—

पुस्तक मिलने का पता—

छेदीलाल हिम्मतसिंहका
भागलपुर सिटी

बांकेबिहारी लाल
सिद्धमाता की गली, बनारस सिटी

मुद्रक—कल्प-तरु प्रेस, मछोदरी पार्क, बनारस।